विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत
लघुशोध परियोजना

शोधकार्य

दिसंबर 2012

हिंदी की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन

(प्रेमचंद और कमलेश्वर के विशेष संदर्भ में)

+ प्रस्तुतकर्ता +

डॉ. बी. आर. थापसे

अध्यक्ष एवं शोधनिदेशक, हिंदी विभाग,
विनायकराव पाटील महाविद्यालय, वैजापुर
जि. औरंगाबाद - 423 701

MRP / 13

प्राक्कथन

विश्व में सबसे अधिक फिल्में भारत में ही बनती है। परंतु फिल्म यह अध्ययन विषय के रूप में अभी भी उपेक्षा का विषय बना हुआ है। समाचारपत्रों, मासिकों एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं में फिल्मों को लेकर काफी कुछ लिखा जाता रहा है। यही नहीं खास फिल्मों के लिए समर्पित पत्र-पत्रिकाएँ भी है। आकाशवाणी, टी.व्ही.माध्यम आदि के जरिए भी फिल्मों पर काफी कुछ बोला जाता है। पर इन सबमें गंभीर समीक्षा व अनुसंधानात्मक दृष्टिकोण नहीं दिखाई देता। दिखाई देता है तो बस कलाकारों के प्रेम प्रकरणों की गॉसिपनुमा चर्चा। फिर आते है समाचार पत्रों में फिल्मी परीक्षण। इसमें फिल्मों के बारे में काफी कुछ लिखा हुआ होता है, अभिनय, संगीत, दिग्दर्शन आदि के संदर्भ में दो-चार वाक्य। और यह फिल्म देखने लायक है कि नहीं के बारे में रेटिंग, अर्थात मूल्यांकन के संबंध में एखाद वाक्य एवं स्टार्स जैसे- ***। और इन्हें ही फिल्मी समीक्षा मानने की प्रथा है। और इस विषय पर जो कुछ पुस्तकें प्रकाशित है उनमें से कुछ को छोड़ दिया जाए तो बाकी सब सामान्य स्तर की है, मात्र जानकारी देनेवाली, कहानी कहने वाली। इस क्षेत्र में मौलिक लेखन काफी कम हुआ है। इसी कारण इस विषय पर विविध अंगों से लेखन समय की माँग है।

साहित्य, संगीत, नाटक, चित्रकारी ऐसे विषयों को जितनी महत्ता दी जाती है उतनी अभी तक फिल्मों को मिली नहीं है। पाठ्यक्रमों से अभी-भी यह विषय परिधि के बाहर है। विश्वविद्यालयों में आज भी इस विषय को लेकर अध्ययन-अध्यापन नहीं होता। अनुसंधान की दृष्टि से भी यह विषय उपेक्षणीय है। इस दृष्टि से मेरा यह प्रयास एक इस दिशा में पड़नेवाला एक कदम है। विषय को सुविधा की दृष्टि से पाँच अध्यायों मे विभाजित किया है।

प्रथम अध्याय में हिंदी फिल्म के इतिहास, द्वितीय में फिल्मांकन की प्रक्रिया तो तृतीय में हिंदी की साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन को लेकर उहापोह किया गया है, साथ ही प्रेमचंद और कमलेश्वर के साहित्य के फिल्मांकन पर विशेष जोर दिया है। चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में साहित्यिक कृतियों का पटकथा एवं प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अध्ययन किया गया है। षष्ठ अध्याय उपसंहार है, जिसमें अनुसंधानपश्चात प्राप्त निष्कर्ष, उपलब्धियाँ एवं संभावनाओं को रखा गया है।

इस विषय पर अनुसंधान करते समय जिन-जिन व्यक्ति-संस्थाओं का सहकार्य मिला उनका आभार व्यक्त करना मैं मेरा कर्तव्य समझता हूँ। सबसे पहले विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, पश्चिम विभागीय कार्यालय, पुणे का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस अनुसंधान कार्य को मान्यता देकर आर्थिक सहायता दी।

मेरे शैक्षिक एवं अकादमिक कार्य को बढ़ावा देनेवाले मेरे गुरुवर्य डॉ. माधव सोनटक्के, डॉ. अंबादास देशमुख, डॉ. पद्मा पाटील, डॉ. गणेशराज सोनाळे, प्रधानाचार्य डॉ. शिवाजीराव थोरे, डॉ. प्रदीप जब्दे के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

मेरे महाविद्यालय के स्थानिक नियामक मंडल के सदस्य व केन्द्रीय कार्यकारणी, म.शि.प्र. मंडल के सदस्य श्री. भाऊसाहेब पाटील ठोंबरे काका एवं पंढरीनाथ पवार, विभाग के सहकारी सुनिल एवं अशोकराव, मित्रवर, सभी सहकारी अध्यापक, प्रबंधक पी.सी.जाधव, कार्यालय अधीक्षक एस.एस.लोखंडे, सहायक ग्रंथपाल सौ. मनिषा साठे, कर्मचारी औताडे आदि सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

इस अनुसंधान कार्य को पूरा करने के लिए मुझे अनेक संस्थानों की यात्रा करनी पड़ी । हिंदी भवन, पंडित रविशंकर शुक्ल हिंदी भवन व्यास, बुक्स वर्ल्ड, शिवा व्हिडिओ एवं भारत भवन, भोपाल, हिंदी बुक सेंटर, संस्कृति प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन, संजय प्रकाशन, सुपर इलेक्ट्रॉनिक्स, कनाट प्लेस, नई दिल्ली, रिदम हाऊस प्रा.लि., योगेश ट्रेडिंग कंपनी, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्राहलय, परिदृश्य प्रकाशन, साहित्य अकादमी, मुंबई आदि सभी संस्थाओं का आभार मानना मैं अपना दायित्व मानता हूँ। भारत में कहीं भी प्रकाशित पुस्तक उपलब्ध कराके देनेवाले कीर्ति प्रकाशन, औरंगाबाद के श्री. सूर्यकांत दाणेकर एवं इस शोधकार्य को टंकित करनेवाली सौ. अर्चना नलावडे, औरंगाबाद का विशेष आभार!

मेरे सभी अध्यापक मित्र एवं अध्यापकेतर कर्मचारी इनका भी आभारी। मेरे परिवार के सदस्य माँ सोजरबाई, भाई डॉ.वैजनाथ, भाभी अर्चना, पत्नी श्रुति एवं शरारती पुत्र अथर्व इनका इस कार्य काफी में सहयोग रहा। अत: उनका भी आभार। अंत में इस अनुसंधान कार्य को पूरा कराने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायता पहूँचानेवाले उन सभी का धन्यवाद!

दिसंबर, 2012

डॉ. बी. आर. धापसे

अनुक्रमणिका

●	प्राक्कथन	i-ii
1.	हिंदी फिल्म का इतिहास	1-14
2.	फिल्मांकन की प्रक्रिया	15-28
3.	हिंदी की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन (प्रेमचंद और कमलेश्वर के विशेष संदर्भ में)	29-49
4.	साहित्यिक कृतियों का पटकथा की दृष्टि से अध्ययन	50-53
5.	साहित्यिक कृतियों का प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अध्ययन	54-57
6.	उपसंहार - निष्कर्ष, उपलब्धियाँ, संभावनाएँ	58-60
●	संदर्भ सूची : अ) मौलिक आ) सहायक इ) पत्र-पत्रिकाएँ	61-68

प्रथम अध्याय

हिन्दी फिल्म का इतिहास

भारतीय जनमानस में सिनेमा अर्थात फिल्म का अपना महत्त्व है। भारत में फिल्में उतनी ही पुरानी है जितनी की फिल्में। जन्म होते ही यह नई खोज भारत भी आ पहूँची। इस मामले में हम पश्चिम के साथ-साथ चलते रहे है। शायद यही एकमात्र ऐसा क्षेत्र होगा जहां हम पश्चिम से पीछे नहीं। पूँरी दुनिया में सबसे अधिक फिल्में भारत में ही बनती है। छोटी फिल्म, फीचर फिल्म, मूक फिल्म एवं बोलती फिल्म, रंगीत फिल्म, वृत्तचित्र, टेलीफिल्म आदि सभी क्षेत्रों में जन्म के साथ ही भारतीय फिल्मसृष्टि जुड़ी रही है। इस क्षेत्र में भारतीय लोगों की लगन, कल्पकता, त्याग, बलिदान, जिंदादिली एवं समर्पण भाव को उल्लेखनीय माना जा सकता है।

मनुष्य उत्क्रांति के अग्रगत अवस्था में सबसे पहले आवाज, इशारों से आपस में संपर्क साधनेवाले मानव ने जीवनस्तर सुधारने के क्रम में अनेक कलाओं की निर्मिति की। शब्दों की निर्मिति की, उससे अनेक भाषाओं की। पौराणिक कथाएँ एक ने दूसरे को, दूसरे ने तीसरे को बताने की प्रक्रिया में लेखन कला का जन्म हुआ। मौखिक परंपरा की क्षण भंगुरता समाप्त हुई। लेखन कला से ज्ञान की व्याप्ति एवं जानकारी की आयु बढ़ गई। लेखन संस्कृति उन्नत हो गई। सैकडों साल यह शब्दसंस्कृति कभी अध्यापन, तो कभी लेखन के माध्यम से विकसित होती गई। उसी में से 'साहित्य संस्कृति' का निर्माण हुआ। साहित्य, संगीत, चित्रकला, शिल्पकला, नाटक, नृत्य एवं लोककला ऐसी अनेक कलासंस्कृतियाँ अपने चरम पर पहूँच रही थी। ठीक उसी समय फोटोग्राफी, कॅमेरा का अविष्कार हुआ। और 'सिनेमा' इस दृक-श्राव्य कला का जन्म हुआ। वैज्ञानिक तकनीक ने एक अद्‌भुत विश्व का निर्माण किया। 'सिनेमा' का जन्म हुआ और मात्र अपने सौ वर्ष में 'डिजिटल तंत्र' अस्तित्व में आया। नित्य नूतन अविष्कारों की अखंड प्रक्रिया ने मानव जीवन के स्तर को अत्यधिक विकसित किया। ऐसे अविष्कृत परिस्थिती में 'सिनेमा'के अध्ययन को विश्व पटल पर लाने की अधिक आवश्यकता है। सिनेमा संस्कृति का जन्म कैसे हुआ, वह कैसे विकसित होती गई, उसमें कलाओं के बीज कैसे पनपे और उसमें से एक विशिष्ट शैली का विकास किस प्रकार हुआ, इस सब को देखने की आज नितांत आवश्यकता है।

19 वी शती मानव संस्कृति के इतिहास में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण शती है। इसी शती में मध्ययुग का अंत एवं यंत्रयुग का आरंभ हुआ। इस युग का आरंभ सर्वप्रथम युरोप में हुआ। क्योंकि वहाँ विज्ञान का प्रचार-प्रसार बहुत जोरों से हुआ। साथ ही वैज्ञानिक बदलावों को युरोपियन लोगों ने बहुत जल्दी स्वीकार कर लिया। भारत में इसकी शुरूआत बहुत ही धीरे-धीरे हुई क्योंकि पूरे मध्ययुग में भारतीय जनमानस पर विज्ञान की अपेक्षा अध्यात्म एवं भक्ति हावी थी।

सिनेमा अर्थात फिल्मकला यह यंत्रयुग की देन है। भारत मे सिनेमा पहुँचा 1896 में। मतलब युरोप में चलचित्रों की खोज के तुरंत बाद मात्र छः महीने में। परंतु उस वक्त भारतीय समाज की मानसिकता ईश्वरकेन्द्री मध्ययुगीन जीवनमूल्यों पर आधारित थी। वैज्ञानिक दृष्टि का पूर्णतः अभाव था। स्वाभाविकतः यह नया आविष्कार मतलब एक 'चमत्कार' के रूप में स्वीकारा गया।

सिनेमा अर्थात 'चल-चित्र' का जन्म 1895 मे फ्रान्स में हुआ। पर उसकी जननी कॅमेरा की खोज स्थिर फोटोग्राफी के माध्यम से हुई। फ्रेन्च सायन्स अॅकडमी ने फोटोग्राफी की खोज 7 जनवरी, 1839 में की। प्रारंभ मे फोटो की पॉझिटिव्ह पेपर

पर होती थी। इस कारण एक फोटो की अनेक प्रतियाँ निकालना संभव नहीं होता था। टॉल्बोटन नामक वैज्ञानिक ने इस समस्या को सुलझाया। उन्होंने कोलोडिन फिल्म निगेटिव्ह का प्रयोग किया। इससे एक फोटों की अनेक प्रतियाँ निकालना आसान हुआ।

एक ओर स्थिर फोटोग्राफी का पेपर पॉझिटिव्ह से फिल्म निगेटिव्ह का प्रयोग चालू था तो दूसरी तरफ ब्रिटिश-स्विस फिजीशियन पीटर मार्क रोज ने 1824 में दृष्टिसातत्य (Persistence of vision) का सिद्धांत प्रतिपादित किया। रोजे के सिद्धांत को बेल्जियन अनुसंधानकर्ता जोसेफ प्लॅटू ने और अधिक उन्नत अवस्था में पहुँचाया । उसने 1830में पेनाकिस्टिस्कोप तैयार किया और अनेकनिक चित्र प्रतिमा एक के बाद एक दिखाकर चित्रपट तैयार करने की दिशा में एक कदम आगे उठाया। ऐसे अनेकविध प्रयोगों से ही सिनेमा प्रोजेक्टर अपने पूर्णत्व को पहुँच पाया। मुव्ही प्रोजेक्टर का मूल मॅजिक लॅन्टर्न में छिपा था। मैजिक लॅन्टर्न में पेंटिंग के मुकाबले फोटो का उपयोग 1850 में शुरू हुआ। सत्रहवीं शती में ही मॅजिक लॅन्टर्नद्वारा पेंटिंग की हुई चित्र भिंगों की सहायता से युरोप-अमेरिका में परदे पर दिखाई जाने लगी। भारत में भी कल्याण के मुंबई में रहनेवाले महादेव गोपाळ पटवर्धन ने मॅजिक लॅन्टर्नद्वारा परदे पर पेंटिंग दिखाने की शुरुवात की। वे मॅजिक लॅन्टर्न लेकर भारतभर घूमे। वे इसके माध्यम से पौराणिक कथाओं को दर्शाते थे। यह बात है 1892 के बादे की। उन्होने मॅजिक लॅन्टर्न के लिए 'शांबरिक-खरोलिका' ऐसा संस्कृत नाम भी खोज निकाला। इसकी स्लाइड्स आज भी पूणे के नॅशनल फिल्म आकाईव्ह में जतन करके रखी हुई है।

चार्ल्स इमिल रेनॉड ने 1877 में प्रॅक्झिनोस्कोप प्रोजेक्टर तैयार किया, इस कारण फिल्मों का प्रोजेक्शन अपने पूर्णत्व को पहूँचा । जॉर्ज ईस्टमन (जिनके नाम से ही ईस्टमन कलर फिल्म है) ने सर्वप्रथम फोटोग्राफिक फिल्म का पेटंट 1889 में लिया। 'सिनेमा' को मूर्त रूप में लाने के लिए इन वैज्ञानिकों ने पार्श्वभूमि तैयार की थी। इस वैज्ञानिक अविष्कारों का उपयोग करके फ्रेन्च ल्यूमियर बंधुओं ने 'चलित-चित्रों' को वास्तव में लाया। ल्यूमियर बंधुओं की फोटोग्राफिक मटेरियल तयार करने की फॅक्टरी थी। उन्होंने उस फॅक्टरी से बाहर पडनेवाले मजदूरों की हिलनेवाले चित्रों की एक फिल्म तैयार की। इस पहले फिल्मस्ट्रिप की लंबाई केवल एक मिनिट थी। ल्यूमियर बंधुओं ने अपने थ्री इन वन मतलब कॅमेरा, प्रिंटर एवं प्रोजेक्टर का पेटंट फरवरी 1895 में लिया। और उसका नामकरण 'सिनेमातोग्राफ' के रूप में किया। इससे ही आगे हिलनेवाले चित्रों को 'सिनेमा' नामक शब्द प्रचलन में आया।

28 दिसंबर, 1895 में पॅरिस में लोग खिसमस त्यौहार को बड़ी धुमधाम से मना रहे थे। खिसमस के मुहूर्त के औचित्य को साधकर ल्यूमियर बंधुओं ने चलचित्रों का पहला शो पॅरिस के 'ॲण्ड कॅफे' में प्रदर्शित किया। उसे देखने के लिए मात्र 40-50 लोग उपस्थित थे। फॅक्टरी में से मजदूर लोग बाहर आ रहे है, छोटा बच्चा सुबह का नाश्ता कर रहा है, दीवार को गिराया जा रहा है, माली बगीचे को नल से पानी दे रहा है ऐसे एक-डेढ़ मिनट की दस 'स्ट्रिप्स' बीस मिनट के पहले शो में दिखाई गई। सिनेमा के इतिहास में का यह पहला शो।

आगे सप्ताह भर इसी तरह अनेक शो दिखाए जाते रहे। ऑगस्ट ल्यूमियर (1862-1954) और लुई ल्यूमियर (1864-1948) इन दो भाईयों ने फ्रान्स मे मुव्ही कॅमेरा, प्रिंटर एवं प्रोजेक्टर तैयार किया। छायालेखन, प्रोसेसिंग एवं प्रक्षेपण इन तीनों का कार्य एक ही मशीनमें होने लगा। इसी कारण ल्यूमियर बंधुओं को ही सिनेमा जगत के उद्गाता के रूप में विश्वभर मान्यता मिली। ल्यूमियर बंधु मूल रूप से व्यापारी थे। पॅरिस में मिले प्रतिसाद के कारण उन्होंने कई सिनेमातोग्राफ मशीन्स बनाई और एजंट को नियुक्त करके पूरे दुनिया भर में फैलाया।

ल्यूमियर का असिस्टंट मॉरिस सेस्सीयर ने मुंबई में इस शो के प्रदर्शन की इच्छा व्यक्त की। मुंबई में काला घोडा के पास 'वॅटसन होटल' था, यह आज भी जहांगीर आर्ट गॅलरी के सामने स्थित है। आज यहाँ पर फिल्मे नहीं दिखाई जाती। इसका प्रयोग आज आवासीय योजना के तहत होता है। यह ऐसी इमारत है जिसमें पहली बार फिल्म दिखाई थी इसलिए सरकार ने इसे 'हेरिटेज वास्तू' के रूप में आज भी संजोया रखा है। ल्यूमियर के दस मूकपट स्ट्रिप्स का यह शो इसी हॉटेल में 7 जुलाई, 1896 को दिखाया गया। इस वक्त इसे । रुपये बतौर टिकट देखा जा सकता था। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' मे इस शो का विज्ञापन

भी देखने को मिलता है।

मॉरिस ने एशिया में सबसे पहला शो मुंबई में दिखाया। फ्रान्स में सिनेमा का पहला शो होने के छः महीने के अंदर ही सिनेमा भारत (मुंबई) में पहुँच गया। सात दिन वॅटसन हॉटल में शो दिखाने के बाद उसे 14 जुलाई 1896 को मुंबई के ही नॉव्हेल्टी नाट्यगृह अभी का एक्सेलसिएर थिएटर में दिखाना प्रारंभ किया गया। उस वक्त वॅटसन थियटर (होटल) में मात्र युरोपियन लोगों को ही प्रवेश दिया जाता था, किसी भी भारतीय व्यक्ति का प्रवेश वहाँ पर वर्जित था। अपनी कला को और अधिक प्रसिद्धि दिलाने के मॉरिस की इच्छा को नॉव्हेल्टी थिएटर में साकार किया गया। क्योंकि उसमें हर कोई प्रवेश कर सकता था। किसी भारतीय व्यक्तिद्वारा देखी गई यह पहली फिल्म थी। और उन भारतीय लोगों मे एक सज्जन थे - हरिश्चंद्र सखाराम भाटवडेकर उर्फ सावेदादा। वे स्वयं फोटोग्राफर थे। उनका अपना एक मुंबई में फोटोग्राफी का स्टूडियो भी था। उन्हें इस बारे में युरोप में हो रहे प्रयोगों की जानकारी थी। ल्यूमियर की तरह उन्होंने भी अपने आसपास घटनेवाली घटनाओं का चित्रीकरण करना शुरू किया। उन्होंने मुंबई के हँगिंग गार्डन में हुए कुश्तियों के कुछ दृश्य चित्रित किए।

नियति का खेल देखिए। ल्यूमियर बंधु 1960 तक जीवित थे। परंतु उनकी प्रामाणिक मान्यता थी कि इस सिनेमातंत्र को कोई भविष्य नहीं है। (This invention has no future) इस कारण उन्होंने इसका नाविन्य समाप्त होते ही फिल्मों का निर्माण भी बंद किया। सिनेमा के ये जन्मदाता आगे चलकर हमेशा के लिए गर्दिश में खो गए। सिनेमा माध्यम आगे चलकर एक प्रभावी कला माध्यम के रूप में विकसित होगा ऐसा उन्हें कभी स्वप्न में भी नहीं लगा।

सिनेमा जैसी आश्चर्यकारक चीज के निर्माण के प्रति समाज के विद्वानों एवं विचारवंतों व रंगभूमि के कलाकारों का देखने का दृष्टिकोन अच्छा नहीं था। वे उसे मौलिक की अपेक्षा यांत्रिक खेल, अर्थात मात्र मेकॅनिकल टॉय मानते थे। उसे सिर्फ रेकॉर्डिंग स्किल' तक ही सीमित रखना चाहते थे। परंतु आगे चलकर इस धारणा में धीरे-धीरे बदलाव आया और पूरे विश्वभर में इस कला के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ा। वैज्ञानिक तकनीक ने भी इसमें भरपूर योगदान दिया। परंतु सिनेमा अभी-भी मूकपट तक ही सीमित था। अमरिका में वॉर्नर ब्रदर्स ने पहली बार 6 अक्तुबर, 1927 को 'जॅझ सिंगर' नामक बोलपट तैयार किया। उसके बाद तो इस सिनेमा नामक माध्यम में कल्पनातीत विकास हुआ।

भारत में सिनेमा :

ल्यूमियर के हिलनेवाले चित्रों का पहला शो सार्वजनिक रूप से 14 जुलाई - 15 अगस्त, 1896 तक चला। उससे प्रभावित होकर सावेदादा जी ने एक प्रोजेक्टर खरीद लिया। चार-पाँच विदेशी मूकपट खरीदकर उसे वे अमीर लोगों के घर-घर जाकर उसे दिखाने लगे। उस वक्त तक थिएटर नामक कोई चीज नहीं थी। टाऊन हॉल, इन्स्टिट्यूट के हॉल, नाटकों के थिएटर एवं तंबुओं में यह मूकपट दिखाए जाते थे। सिनेमा के लिए अपना कोई घर नहीं था। अमीर लोग सार्वजनिक स्थानों पर सिनेमा देखना पसंद नहीं करते थे। इसलिए सावेदादा को घर-घर जाकर ये फिल्में दिखानी पड़ती थी। इसका दूसरा फायदा यह हुआ कि सावेदादा को इससे अच्छे आमदनी हुई। इसी आमदनी से उन्होंने आगे चलकर 1898 में लंदन से 'रिले ब्रदर्स' की ओर से कॅमेरा आयात किया। 1909 में उन्होने ल्यूमियर बंधुओं का ही कॅमेरा खरीद किया। 1901 में कॅम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक भारतीय विद्यार्थी रँगलर र.पु.परांजपे ने गणित में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। सावेदादा ने उनके मुंबई पहुँचने पर उनके स्वागत का फिल्मांकन किया। 1901 में बनी इस फिल्म को भारत का पहला वृत्तचित्र भी माना जाता है।[1] मुंबई में सावेदादा जब दस-पंद्रह मिनटों के मूकपट बना रहे थे उसी वक्त कोलकत्ता में हिरालाल सेन नाटक, जात्रा में के दृश्य कॅमेरा में कैद कर रहे थे। महाराष्ट्र एवं बंगाल को छोड़कर अन्य किसी भी प्रांत में 1915 तक सिनेमा की निर्मिति नहीं होती थी।

---

1. भारतीय सिनेसिद्धांत, अनुपम ओझा, पृ. 51

आगे चलकर पाटणकर-करंदीकर-दिवेकर इन्होंने 'पाटणकर युनियन' नामक कंपनी की स्थापना कर 'सावित्री' नामक मूकपट बनाने की तैयारी की। अहमदाबाद की नर्मदा मांडे इसमें सावित्री की भूमिका अदा कर रही थी। परंतु तकनीकी खराबी के कारण चित्रित की हुई फिल्म कोरी ही निकल गई। और इस तरह भारतीय सिनेमा के पर्दे पर आई हुई पहली स्त्री यह सन्मान नर्मदा मांडे को न मिल सका। सावित्री फिल्म 1912 में आई । इसी साल दादासाहेब तोरणे जी ने 'पुंडलिक' बनाई। यह 18 मई, 1912 को मुंबई के कॉरोनेशन फिल्म थियटर में प्रदर्शित हुई।

यूँ तो फिल्म निर्माण के क्षेत्र में प्रयत्न काफी जगह हो रहे थे। और यह 1902 से ही शुरू हुए थे। सन 1902 में कोलकता मे टेंट के अंदर 'बाइस्कोप' नाम से सिनेमा दिखाने की परंपरा की शुरुआत जे. एफ. मदान ने की। जे. एफ. मदान ने कोलकता में सिनेमा थिएटरों की एक शृंखला शुरू की और इसके साथ-साथ इन्होंने चलचित्रों के निर्माण और इसके प्रदर्शन को बाकायदा एक सिलसिलेवार ढंग से शुरू किया। इस तरह भारत में प्रथम सिनेमा थिएटर के निर्माण का श्रेय जे. एफ. मदान को ही जाता *है जिन्होने प्रथम सिनेमा थिएटर के रूप में, सन 1907 में कोलकता शहर में ही 'एलिफिंस्टन पिक्चर पैलेस' की स्थापना की।*[1] कोलकता में ही हिरालाल सेन भी इसमें अपना योगदान दे रहे थे । साथ ही सूरत के अब्दुल अली युसुफ अली, पी.बी.मेहता, माणिक डी.सेहना के प्रयत्न भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। इसके बाद नाम आता है भारतीय फिल्म जगत के निर्माता धुंडिराज गोविन्द फालके जी का। इनके द्वारा निर्मित 'राजा हरिश्चंद्र' (1913) को भारत की पहली फिल्म माना जाता है।

भारत की पहली फिल्म :

भारत की पहली फिल्म किसे कहा जाए इसको लेकर विद्वानों मे मतभेद है। इसके संबंध में यहाँ पर थोडा ऊहापोह किया जाना आवश्यक है। मुंबई के रामचंद्र गोपाल तोरणे ने पी.आर.टिपणीस और एन.जी. चित्रे की सहायता से सन 1912 में 'पुण्डलिक' बनाई। यह भारत की पहली कथा फिल्म है जिसमें कलाकारों ने इस फिल्म के लिए विशेष रूप से अभिनय किया। इसका छायांकन विदेशी छायाकार द्वारा किए जाने के कारण शायद इसे भारत की पूर्ण स्वदेशी कथा फिल्म का सम्मान नहीं मिल पाया। और यह सम्मान इस फिल्म के निर्माण से लगभग एक वर्ष बाद दादासाहेब फालके द्वारा निर्मित फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' को मिला खैर, विवाद चाहे जो भी हो लेकिन 'पुंडलिक' का नाम भारतीय सिनेमा के इतिहास में हमेशा दर्ज रहेगा। यदि 'पुण्डलिक' को पूर्ण स्वदेशी प्रथम भारतीय कथा फिल्म का सम्मान मिला होता तो निश्चित तौर पर भारत, पूरे विश्व में प्रथम कथा फिल्म निर्माता के रूप में विश्व सिनेमा ने इतिहास में अपना स्थान रखता। क्योंकि विश्व की प्रथम कथा फिल्म का निर्माण फ्रान्स में हुआ था और उस फिल्म का नाम था 'क्वीन एलिजाबेथ' जिसका प्रदर्शन 12 जुलाई, 1912 को अर्थात 'पुण्डलिक' से लगभग दो महीने बाद, फ्रान्स सें हुआ।'[2] महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इस फिल्म की एक भी प्रति उपलब्ध नहीं हुई। उसके विषय में 'टाईम्स ऑफ इंडिया' में प्रकाशित एक समाचार के सिवा कोई साक्ष्य नहीं है।

5 जुलाई, 1896 में ल्यूमियर बंधुओं द्वारा प्रथम फिल्म प्रदर्शित होने के बाद 1912 तक भारत में फिल्म निर्माण के अनेक प्रयोग होते रहे। कुछ सफल हुए तो कुछ असफल। परंतु इन प्रयत्नों से जिसे आज भारतीय फिल्म व्यवसाय के बतौर पहचान है वह व्यवसाय अपने मूर्त रूप में ना आ सका । क्योंकि 1912 तक के फिल्म निर्माण यह प्रयत्न अपने बाल्यावस्था में ही थे, प्रयोगावस्था में थे, अविकसित थे। वे पूर्णरूप से विकसित हो सके विश्व की पहली फिल्म (1913) के लगभग 17 वर्षों के बाद 'राजा हरिश्चंद्र' इस फिल्म द्वारा। भारतीय फिल्मी व्यवसाय की शुरुआत की असल में दादासाहेब अर्थात धुंडिराज गोविंद फालके इस आदमी ने, इस कलाकार ने, इस अविष्कारक ने। इस फिल्म के निर्माण की एक पूरी रील आज भी 'राष्ट्रीय

---

1. भारतीय सिनेमा : एक अनंत यात्रा, प्रसून सिन्हा, पृ. 23
2. वही, 23-24

फिल्म संग्राहलय, पुणे' में उपलब्ध है।

दादासाहेब फालके ने सन 1885 में जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट और कला भवन, बडौदा से चित्रकला और फिर वास्तुकला की पढ़ाई पूरी की। इसके बाद चित्रकार बन गए। फिर फोटोग्राफी से जुड़े। इसी दौरान उन्होंने फिल्म को डेव्हलप करना, निगेटिव्ह से प्रिंट बनाना आदि सिखा। फिर सन 1890 में रतलाम चले गए और वहाँ उन्होने थ्री कलर ब्लॉक मेकिंग, फोटोग्राफी और सेरामिक कला की विशेष पढ़ाई की। चित्रकार, छायाकार के साथ-साथ एक नाटक मंडली में मैकपमेन के रूप में कार्य करने लगे। यहाँ काम करते हुए एक जर्मनी के जादूगर के संपर्क में आए और स्वयं जादूगर बन गए। आगे चलकर 1908 में लोणावला में 'फालके आर्ट प्रिंटिंग ॲन्ड इनग्रेव्हिंग वर्क्स' नाम से अपना एक छापखाना खोला। इसी का नाम आगे चलकर 'लक्ष्मी आर्ट प्रिंटिंग वर्क्स' रख दिया। कुछ नया एवं अद्‌भुत करने की फिराक में रहनेवाले फालके ने सन 1911 में, ईस्टर के दिन उन्होंने एक विदेशी फिल्म देखी जिसका नाम था, 'The life of chirst'।[1] इस फिल्म को देखने के बाद वे फिल्म निर्माण के प्रति प्रेरित हुए और भगवान श्रीकृष्ण के जीवन पर फिल्म बनाने का निश्चय कर लिया। लेकिन उस समय तक, फिल्म निर्माण की बारिकियों और तकनीकों की पूरी जानकारी नहीं थी। फिर इस विषय से प्रेरणा पाकर वे फिल्म निर्माण की तकनीकी जानकारी प्राप्त करने इंग्लैंड चले गए। वहाँ ये फिल्म निर्माण में उपयोगी, विल्सन कॅमेरा, कोड व निगेटिव्ह और अन्य उपयोगी सामान खरीदकर भारत लौट आए।

अपने लंदन प्रवास के दौरान उन्होंने वहाँ के वॉल्टन स्टूडियो में मिस्टर सेसिल हेपवर्थ से इस विषय में विधिवत शिक्षा ग्रहण की। वापस आकर सबसे पहले उन्होंने, फिल्म के 'सिंगल फ्रेम' तकनीक के अंतर्गत चने के एक अंकुरित बीज से पौधा बनने तक की पूरी प्रक्रिया को, प्रतिदिन एक शॉट येते हुए लगभग एक महिने में पूरा किया। अपने द्वारा निर्मित इस फिल्म का नाम उन्होने 'The Birth of A Pea Plant' दिया। जिसे सन 1912 में उन्होने प्रदर्शित किया था। यह भारत की पहली पूर्ण स्वदेशी अनुदेशीय फिल्म के रूप में जानी जाती है। इसके बाद फालके ने कथाफिल्म बनाने की तैयारी शुरु की। उन्होंने अपनी पहली कथाफिल्म के लिए जिस कहानी और चरित्र को चुना वह भी धार्मिक कथा थी और उसका चरित्र भी काफी सशक्त था और जिसका नाम था-राजा हरिश्चंद्र।

वैसे फालके, इस फिल्म में राजा हरिश्चंद्र की पत्नी के रूप में किसी महिला कलाकार को लेना चाहते थे लेकिन काफी कोशिशों के बाद भी उन्हें ऐसी कोई महिला नहीं मिली। उन दिनों फिल्मों में महिलाओं का काम करना कदापि सम्भव नहीं था। समाज का कोई भी वर्ग इसके लिए तैयार न था। मजबूरी में फालके को राजा हरिश्चंद्र की पत्नी, तारामति के लिए, एक मर्द को ही औरत बनाकर प्रस्तुत करना पड़ा। जो उनका रसोइया भी था। जिसका नाम था - पांडोबा जी. साने। वैसे इसमें और दो कलाकार महिला बने थे - गणपत गंगाराम शिंदे और कृष्णा हरी साळुंखे । सन 1912 के समाप्त होने और 1913 के शुरू होते-होते, भारत की प्रथम पूरी स्वदेशी टीम द्वारा निर्मित पहली कथा फिल्म सम्पूर्ण हुई। 21 अप्रैल 1913 को यह फिल्म आमंत्रित मेहमानों और पत्रकारों के बीच प्रदर्शित हुई और अंततः 17 मई 1914' को 'पुण्डलीक' के निर्माता श्री नानाभाई गोविंद चित्रे के कॉरोनेशन थियटर में इसका सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन डॉ. भालचंद्र भाटवडेकर के हाथों से हुआ। इस तरह भारतीय फिल्मों के इतिहास में एक सुनहरा पन्ना जुड़ गया। 'राजा हरिश्चंद्र' सिर्फ चार रील की फिल्म थी और इसकी कुल लंबाई 3700 फीट थी। फिल्म की लोकप्रियता का कारण 'सब टाइटल्स' भी था जो हिंदी और अंग्रेजी दोनो भाषाओं में थे। 'राजा हरिश्चंद्र' के निर्माण के लगभग चार साल बाद फालके ने सन 1917 में दो कथा फिल्म बनाई - जो 'कृष्ण जन्म' और 'लंकादहन' के नाम से जानी जाती है। 1917 तक दादासाहेब फालके अकेले फिल्मकार थे जिन्होंने 23 से भी अधिक मूल फिल्मों का निर्माण किया। इस दौर में अधिकतर धार्मिक फिल्मों का ही निर्माण हुआ ।

---

1. दादासाहेब फाळके, श्याम मुजावर, पृ. 45

जहाँ दादासाहब फालके ने मूक फिल्में बनाई वहाँ बंगाल में भी जे.एफ.मदान का 'मदान थिएटर्स' काफी प्रगति कर रहा था। इस थिएटर ने 1917 में सर्वप्रथम फिल्म 'नल दमयन्ती' बनाई। दक्षिण भारत में भी पी.वनकैया द्वारा निर्मित पहली फिल्म 'भीष्म प्रतिज्ञा' थी। इन फिल्मों पर तत्कालीन पारसी थियेट्रीकल कंपनियों का प्रभाव प्रचुर मात्रा में पडा। 1925 के बाद भारत के इतिहास को लेकर ज्यादातर फिल्में बनी। सन 1913 से 1920 तक लगभग 49 मूक फिल्में बनी। विस्तार भय के कारण सभी फिल्मों के नाम नहीं दिए जा रहे है।

बीसवीं शती के तीसरे दशक में भी मूक फिल्मों का दौर जारी रहा। सन 1921 में प्रदर्शित फिल्म 'विदेशी वस्त्रों की होली' में महात्मा गांधी ने अभिनय किया था। सन 1923 मे कोहेनूर कंपनी के मालिक द्वारकादास नागलमल संपत ने फिल्म 'भवत विदुर' में गांधीजी की भूमिका अभिनीत की एवं ब्रिटीश सरकार के विरूद्ध हावभाव, बोल (परदे के पीछे) प्रदर्शित किए, जिनके कारण सिनेमाटोग्राफी एक्ट 1918 के तहत इस फिल्म पर प्रतिबंध लगा दिया गया। प्रतिबंधित होनेवाली यह पहली फिल्म थी। सन 1925 में भारत की पहली महिला फिल्म निर्माती फातमा बेगम की 'बुलबुल-ए-पाकिस्तान' प्रदर्शित हुई। इस दशक मे लगभग 947 फिल्में बनी।

भारतीय फिल्मों जनक फालके अपनी पहली पहली फिल्म के बाद 1930 तक काफी उतार-चढ़ाव देख चुके थे। प्रथम विश्वयुद्ध, फिल्म कंपनी का बनना, टूटना, दूसरी कंपनी बनाना आदि में वे काफी व्यस्त रहे। आनेवाले वर्षों में फालके फिल्म उद्योग की बढ़ती रफ्तार में पीछे छूटते गए और धीरे-धीरे हाशिए पर खड़े हो गए। इनकी शारीरिक हालत कमजोर होती गई और फिल्म निर्माण ठप्प हो गया। अपनी कंपनी के बंद हो जाने के बाद लगभग पाँच वर्ष बाद, फालके ने सन 1937 में कोल्हापुर सिनेटोन कंपनी के बैनरतले अपने जीवन की अंतिम और एकमात्र सवाक् फिल्म 'गंगावतरण' का निर्माण किया। नए सिनेमा के साथ-साथ नए विषयों को लेकर फिल्म निर्माण के कारोबार में लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। सन 1931 में भारत में सवाक फिल्मों का आरम्भ हुआ। भारतीय सिनेमा का रंगरूप तेजी से बदलने लगा। लोग धीरे-धीरे भारतीय फिल्म के पितामह को भूलते गए। सन 1944 में फालके ने इस दुनिया से बिदाई ले ली। फालके इतिहास बनकर रह गए। आज सिनेमा के इस इतिहासपुरूष के सम्मान में भारत सरकार द्वारा हर वर्ष, सिनेमा में विशेष योगदान के लिए 'दादासाहेब फालके पुरस्कार' के नाम से शीर्ष सम्मान दिया जाता है।

हिंदी सिनेमा की पहली भारतीय और हिंदी सवाक् फिल्म 'आलमआरा' थी। जिसके संवाद-गीत आदि हिंदुस्थानी में बोले गए थे। इसे 1931 में श्री आर्देशर ईराणी की फिल्म निर्माण संस्था 'इंपीरियल फिल्म कंपनी' ने बनाया था। इस फिल्म का प्रदर्शन 14 मार्च 1931 को मैजस्टिक सिनेमा मुंबई में किया गया था।[1] फिल्म निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी की, इसके निर्माण, संपादन, तकनीकी पक्ष में किसी भी विदेशी तकनीशियन की मदत नहीं ली गई, जैसे पहले ली जाती थी। इसके बाद तो हिंदी फिल्म निर्माण क्षेत्र में बाढ़ सी आ गई। सवाक् फिल्मों के आगमन के साथ ही फिल्मों में गानों का प्रचलन शुरू हुआ। उस वक्त के कलाकार ऐसे थे जो अभिनय के साथ-साथ गाना भी गा सकते थे। परंतु कभी-कभी किसी आकर्षक व्यक्तित्व और अभिनय प्रवीण पात्र को सिर्फ गाने की अनभिज्ञता के कारण फिल्मों मे प्रवेश नहीं मिल पाता था। इस प्रकार, प्रत्यक्ष गायन की पद्धति में फिल्म-प्रक्रिया में दो व्यावहारिक कठिनाईयों को जन्म दिया। एक तो माइक्रोफोन की और दूसरी कलाकारों की गाने की अनभिज्ञता। इन्ही कठिनाइयों ने जन्म दिया पार्श्व-गायन को। इन्ही दिनों पार्श्वगायक-गायिकाएँ जैसे- जी.एम. दुर्रानी, बड़े गुलाम अली खाँ, फैयाज खां, प्रा. रामकृष्ण बाज, सरस्वती बाई, एम.एस. सुब्बलक्ष्मी, शमशाद बेगम आदि लोकप्रिय हुए। गीतों का प्रयोग फिल्मों में शुरू होते ही निर्माता-निर्देशकों ने एक फिल्म में चार-छः गीतों से लेकर चालीस-पैंतालीस गीत तक डालने शुरू कर दिए। किसी-किसी फिल्म में तो सत्तर-पचाहत्तर तक गीतों की संख्या पाई गई।[2]

---

1. भारतीय फिल्मों की कहानी, बच्चन श्रीवास्तव
2. संगीत का सौंदर्य बोध-फिल्म संगीत के संदर्भ में, डॉ.उमा गर्ग, पृ.7

फिल्मों के इतिहास का स्वरूप काफी बृहद है, उसे तो मात्र खण्डों में लिखा जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक फिल्म का, कलाकार का, निर्माता-निर्देशक, गायक-गायिका का अपना एक इतिहास होता है। ऐसे में पहली फिल्म से लेकर आज तक के फिल्म के इतिहास को संजोए पाना काफी दूष्कर कार्य है। इसमें विस्तार भय का खतरा बना हुआ है। हम यहाँ पर कुछ फिल्म कंपनियों की चर्चा करेंगे साथ ही उन महापुरूषों की जिन्होंने इस क्षेत्र में अपना अमूल्य योगदान दिया। भारतीय सिनेमा के आरंभिक काल में चंदुलाल शाह, जे.बी.एच. वाडिया, आर्देशर ईरानी, जे.एफ.मदान आदि वे लोग थे जिनकी मेहनत लगन, सूझबूझ और धनक्षमता की शक्ति ने भारतीय सिनेमा को एक अलग पहचान दी। साथ ही इनमें हिमांशु राय, बी.एन.सरकार, बी.सी.बरूआ, नितिन बोस, और देवकी बोस, बाबुराव पेंटर, बाबुराव पेंढारकर, व्ही. शांताराम आदि प्रमुख है। हिंदी फिल्म के इतिहास में इन कंपनियो और उनके कर्ता-धर्ताओं के योगदान को निम्मोक्त रूप में देख सकते है-

1) कोहिनूर फिल्म कंपनी : सन 1918 में, भारत की सबसे बड़ी और प्रभावशाली मूक फिल्मों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध डी.एन.सम्पत और माणिकलाल पटेल ने, इस कंपनी की स्थापना की थी। इस कंपनी ने हिंदी फिल्म व्यवसाय को काफी फिल्में एवं कलाकार दिए। कुछ अपरिहार्य कारणों से सन 1932 में यह कंपनी बंद हुई।

2) कृष्णा फिल्म कंपनी : मुंबई के कृष्णा फिल्म लैबोरेटरी को सन 1924 में बदलकर माणिकलाल पटेल ने इस कंपनी की स्थापना की। वे स्वयं एक साहित्यकार थे और कृष्ण कुमार के नाम से फिल्में भी लिखा करते थे। इस कंपनी ने लगभग 44 फिल्मों का निर्माण किया। यह कंपनी सन 1935 में बंद हुई।

3) इम्पीरियल फिल्म कंपनी : फिल्म कंपनियों के इस दौर में सन 1926 में युसुफ अली और दाऊद जी रंगवाला के साथ मिलकर आर्देशर ईरानी ने इस कंपनी की स्थापना की। इन्हीं के द्वारा हिंदी की पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' 14 मार्च 1931 को मुंबई के मैजेस्टिक थिएटर में रिलीज हुई थी। इस कंपनी के मुख्य निर्देशकों में आर.एस.चौधरी, बी.पी.मिश्रा और मोहन भवनानी का नाम आता है। इस कंपनी ने अपनी कई मूक फिल्मों का सवाक फिल्मों के रूप में पुनर्निर्माण भी किया था। हिंदी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं जैसे गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगु, बर्मिज, पश्तो और उर्दू आदि में भी इस कंपनी ने कई फिल्मों का निर्माण किया। गिडवानी द्वारा निर्मित फिल्म 'किसान कन्या' सन 1937 में बनी थी और भारत की यह प्रथम स्वदेशी रंगीन फिल्म थी। इस कंपनी का भारतीय सिनेमा की अनंत यात्रा में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सन 1938 में यह कंपनी बंद हो गई और सागर मूवीटोन द्वारा इसका अधिग्रहण कर लिया गया।

4) प्रभात फिल्म कंपनी : सन 1929 में कोल्हापूर के महाराज के सहयोग से, बाबुराव पेंटर की देखरेख में चल रही 'महाराष्ट्र फिल्म कंपनी' के चार मुख्य स्तंभ व्ही. शांताराम, विष्णुकांत दामले, बाबुराव पेंढारकर और फत्तेलाल थे, जिन्होंने इस कंपनी को छोड़कर इस नई कंपनी की शुरूआत की थी। सन 1933 में इस फिल्म कंपनी का कोल्हापुर से पुणे स्थानांतरण किया गया। कुछ वर्षों में ही यह कंपनी कोलकता स्थित 'न्यू थिएटर' के बराबर की कंपनी गई। इस कंपनी ने काफी हिट फिल्में दी। इसी कंपनी ने 'अमृतमंथन', 'संत तुकाराम', 'अयोध्या का राजा', 'संत ज्ञानेश्वर' आदि प्रसिद्ध फिल्में बनाई। आगे चलकर सन 1942 में आपसी मतभेदों के कारण व्ही. शांताराम ने इस कंपनी छोड़ दिया। और मुंबई में अपनी 'राजकमल कला मंदिर' नाम से कंपनी खोली। 1953 में प्रभात फिल्म कंपनी बंद हुई। उस बीच मुंबई में व्ही. शांताराम ने अपने बैनरतले कई ज्वलंत सामाजिक समस्याओं पर आधारित हृदयस्पर्शी फिल्मों का निर्माण किया। डॉ.कोटनिस की अमर कहानी, दो आँखे बारह हाथ, नवरंग, झनक झनक पायल बाजे, जल बिन मछली नृत्य बिन बिजली, गीत गाया पत्थरों ने, पिंजरा आदि अजरामर फिल्में व्ही. शांताराम ने हिंदी फिल्म सृष्टि को दी। लता मंगेशकर, देवानंद को पहली बार व्ही.शांताराम ने ही पर्दे पर लाया।

5) रणजीत मूवी टोन : इस कंपनी की स्थापना सन 1928 में चंदुलाल शहा, मशहुर गायिका गौहर और विठ्ठलदास मास्टर ने की थी। इस कंपनी का कुल कार्यकाल, सारी कंपनियो से अधिक रहा है। यह कंपनी सन 1929 से लेकर सन 1960 तक अपने क्षेत्र में कार्यरत रही। सामाजिक, व्यंगात्मक और स्टंट फिल्मों के निर्माण में यह कंपनी अपनी अलग छाप छोड़ गई।

6) **सागर फिल्म कंपनी :** सन 1930 में चिमनलाल देसाई और अम्बालाल पटेल ने मुंबई में यह कंपनी बनाई। हिंदी के साहित्यिक के.एम.मुंशी इसी कंपनी से जुड़े थे। यह कंपनी 1939 में बंद हुई।

7) **न्यू थिएटर :** इसकी स्थापना बी. एन. सरकार ने सन 1931में की थी। यह एक ऐसी कंपनी थी, जिसने बंगला और हिंदी भाषा में एक साथ कई सफल और लोकप्रिय फिल्मों का निर्माण किया। बी.एन.सरकार को फिल्म क्षेत्र के योगदान को लेकर दादासाहब फालके पुरस्कार दिया जा चुका है। 1955 में यह कंपनी किन्ही कारणों से बंद हुई।

8) **बॉम्बे टॉकीज :** सन 1934 में हिमांशु राय ने इसकी स्थापना की, यह पहली पब्लिक लिमिटेड कंपनी रही । हिमांशु रॉय ने इस बॅनर तले अनेक हिट फिल्में दी। सदाबहार अभिनेता अशोककुमार और दिलीपकुमार इन्हीं की देन है। बॉम्बे टॉकीज आगे चलकर 'फिल्मिस्तान'में तबदील हुई जो सन 1954 में बंद हुई।

9) **वाडिया मूवीटोन :** सन 1933 में जे.बी.होमी वाडिया ने इसकी स्थापना की। स्टंट फिल्मों एव पारसी रंगमंच के लिए यह कंपनी प्रसिद्ध की। 1942 में यह कंपनी बंद हुई। इसी कंपनी को व्ही. शांताराम ने खरीदकर अपनी 'राजकमल कला मंदिर' नाम की खुद की कंपनी बनाई थी।

सन 1935 में पूरे भारत में छोटी-बड़ी मिलाकर कुछ 85 फिल्म निर्माण कंपनियाँ मिलकर फिल्मों का निर्माण कर रही थी। महबूब खान के 'महबूब प्रोडक्शन', विमल राय के 'बिमल राय प्रोडक्शन', राजकपूर के 'आर.के. फिल्मस' देव आनंद के 'नवकेतन इंटरनेशनल, 'गुरूदत्त के' गुरूदत्त फिल्म्स, जेमिनी प्रोडक्शन, ए.एम.व्ही. प्रोडक्शन, बी.आर. चोपडा के बी.आर.फिल्म्स, एस. मुखर्जी के फिल्मालय प्रोडक्शन, सुबोध मुखर्जी के 'सुबोध मुखर्जी प्रोडक्शन', ताराचंद बडजात्या की 'राजश्री प्रोडक्शन' रामानंद सागर के 'सागर आर्ट', सुभाष घई के 'मुक्ता आर्टस्' आदि कंपनियों द्वारा भी काफी फिल्मों का निर्माण किया गया।

1931 में बनी पहली बोलती फिल्म 'आलमआरा' से हिंदी फिल्म इतिहास को (मात्र संख्या के आधारपर अर्थात हर साल बननेवाली फिल्में) निम्नोक्त रूप में देख सकते है-

1) **1931** : इस वर्ष 28 फिल्मों का निर्माण हुआ। उसमें से हिंदी की 23 सवाक् एवं 64 मूकफिल्में थी। पहली बोलती फिल्म के निर्माता आर्देशर इराणी ने पूरे जीवन काल में 158 फिल्मों की निर्मिति की।

2) **1932** : इस वर्ष हिंदी की 61 फिल्मों का निर्माण हुआ। इसी वर्ष 'द मोशन पिक्चर्स ऑफ इंडिया' की स्थापना हुई। आगे चलकर 1952 में यही संस्था 'फिल्म फेडरेशन ऑफ इंडिया' के नाम से काम करने लगी। 'सिनेमा संसार' नामक पहला सिने साप्ताहिक राधाकृष्ण शर्मा ने शुरू किया। इसी वर्ष प्रदर्शित हुई 'इंद्रसभा' नामक फिल्म में कुल 71 गाने थे।

3) **1933** : इस वर्ष 71 फिल्मों की निर्मिति हुई। मूक फिल्में बनना धीरे-धीरे बंद होने लगा। भारत के पहले रंगीत फिल्म 'सैरन्ध्री' की निर्मिति इसी वर्ष हुई। पहले एयर कंडिशन सिनेमा हॉल की 'रीगल' की शुरूआत मुंबई में सन 33 में ही हुई।

4) **1934** : इस वर्ष 121 हिंदी फिल्मों का निर्माण हुआ। 'चित्रपट' इस हिंदी साप्ताहिक का प्रकाशन ऋषभचरण जैन ने दिल्ली से किया। आलमआरा की नायिका झुबैदा ने 'महालक्ष्मी सिनेटोन' इस कंपनी की स्थापन की। **'अजंठा सिनेटोन' इस कंपनी के लिए हिंदी के लेखक प्रेमचंद काम करने लगे। इसी वर्ष 'सेवासदन' की**

निर्मिति हुई थी।

5) 1935 : इस वर्ष 154 हिंदी फिल्मों का निर्माण हुआ। प्रसिद्ध फिल्म 'देवदास' इसी वर्ष प्रदर्शित हुई।

6) 1936 : इस वर्ष हिंदी की 135 फिल्में रिलीज हुई। दादामुनि अर्थात अशोक कुमार का आगमन इसी साल हुआ।

7) 1937 : इस वर्ष हिंदी की 102 फिल्मों का निर्माण हुआ। दादासाहब फालके की आखिरी फिल्म 'गंगावतरण' इसी वर्ष प्रदर्शित हुई। इनके नाम से शुरू पुरस्कार की प्रथम हकदार उस वक्त की ड्रीमगर्ल 'देविका रानी' बनी।

8) 1938 : इस वर्ष 85 फिल्में प्रदर्शित हुई। हिंदी फिल्म इतिहास का यह रौप्य वर्ष था। 1913 में ही 'राजा हरिश्चंद्र' बनी थी ।

9) 1939 : इस वर्ष 80 फिल्में बनी। प्रसिद्ध गीतकार कवि प्रदीप का इसी वर्ष आगमन हुआ। 'वाहिनी पिक्चर्स' यह कंपनी इसी साल बनी।

10) 1940 : इस वर्ष 85 फिल्में बनी। इस वर्ष बनी 'संत ज्ञानेश्वर' को पहली बार अमरिका में दिखाया गया था।

11) 1941 : इस वर्ष हिंदी की 73 फिल्में बनी । भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास पर बनी, 'चित्रलेखा' इसी वर्ष आई।

12) 1942 : 98 हिंदी फिल्में इस वर्ष बनी। महात्मा गांधी द्वारा देखी गई पहली फिल्म 'रामराज्य' इसी वर्ष बनी। शमशाद बेगम, सुरैया, नूरजहाँ इन कलाकारों आगमन इसी वर्ष हुआ।

13) 1943 : इस वर्ष 106 फिल्में बनी। अबतक बनी फिल्मों में सबसे ज्यादा दिन चलनेवाली फिल्म 'किस्मत' इसी साल बनी। सोहराब मादी का 'मिनर्व्हा मूव्हीटोन' इसी वर्ष शुरू हुआ। सुपरहिट फिल्म की कल्पना इसी फिल्म ने कायम की।

14) 1944 : इस वर्ष 85 फिल्में बनी। दिलीप कुमार का बतौर नायक इसी वर्ष आगमन हुआ था। भारतीय फिल्म सृष्टि के जनक दादासाहब फालके का देहांत भी इसी वर्ष हुआ। प्रभात फिल्म कंपनी की आखरी फिल्म 'रामराज्य' इसी वर्ष आई।

15) 1945 : कलकत्ता के प्रसिद्ध न्यू थिएटर की आखरी फिल्म 'हमराही' इस वर्ष प्रदर्शित हुई। बतौर नायक देव आनंद का आगमन हुआ। गायक मुकेश का आगमन इसी वर्ष हुआ। इस वर्ष सौ के करीब फिल्में बनी।

16) 1946 : इस वर्ष 155 फिल्में बनकर तैयार हुई। एम.जी.एम. कंपनीद्वारा 16 एम.एम. के प्रिन्ट्स निकालकर टूरिंग टॉकिज कल्पना अमल में लाई गई। यह वर्ष भारत-पाकिस्तान विभाजन के साए में गुजरा।

17) 1947 : इस वर्ष 183 फिल्में बनी। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपलब्ध में 'आजादी का उत्सव' नामक एक खास फिल्म बनायी। लता मंगेशकर बतौर गायक इसी वर्ष सामने आई। राजकपूर का आगमन भी इसी वर्ष हुआ। मा.भगवान ने 'जागृति स्टूडियो' की स्थापना मुंबई में की। सत्यजित रे अर्थात चिदानंद दासगुप्ता ने कलकत्ता में 'फिल्म सोसायटी' की स्थापना की। संवाद और गीतों के ग्रामोफोन की सार्वजनिक रूप से विक्री स्वतंत्रता के बाद इसी वर्ष हुई।

18) 1948 : 247 फिल्में इस वर्ष बनी। 'आर.के. फिल्मस' की शुरूआत इसी वर्ष हुई।

19) **1949** : इस वर्ष 159 फिल्में बनी । 'नवकेतन फिल्म कंपनी' एवं 'मूवी टाईम्स' नामक फिल्मी मासिक की शुरूआत इसी वर्ष हुई। 16 एम.एम.से बढ़कर 35 एम.एम. की 'अजित' नामक फिल्म इसी वर्ष बनी।

20) **1950** : इस वर्ष 114 फिल्में बनी। देवानंद और सुरैया के प्रेमप्रकरणों की चर्चा इस वर्ष काफी रही।

21) **1951** : इस वर्ष 99 फिल्में बनी। इसी वर्ष मुंबई में सेन्सार बोर्ड की पुनर्रचना हुई। इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप की 'स्क्रीन' नामक फिल्मी साप्ताहिक की शुरुआत हुई। फिल्म फेडरेशन की स्थापना इसी वर्ष हुई।

22) **1952** : 104 हिंदी फिल्में इस वर्ष बनी। मुंबई में पहला अंतराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव संपन्न हुआ। संगीतमय फिल्म 'बैजु बावरा' की निर्मिति इसी वर्ष हुई। अब रंगीन फिल्मों की मांग बढ़ने लगी।

23) **1953** : इस वर्ष 97 फिल्में बनी। इसी वर्ष भारत सरकार द्वारा फिल्मों के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों की घोषणा हुई। बिनाका गीतमाला सिलोन से प्रारंभ इसी वर्ष हुई। 'फिल्मफेअर' मासिक की ओर से पुरस्कारों की शुरूआत इसी वर्ष हुई। पहला राष्ट्रीय पुरस्कार मराठी फिल्म 'श्यामची आई' को मिला। संगीत के लिए पहला पुरस्कार नौशाद को मिला।

24) **1954** : हिंदी में इस वर्ष 118 फिल्में बनी। फिल्म निर्माता बाबुराव पेंटर का देहांत भी इसी वर्ष हुआ।

25) **1955** : इस वर्ष 130 फिल्में बनी। कलाकार सुनील दत्त एवं हेलन, शोभा खोटे का आगमन इसी वर्ष हुआ। राज कपूर का श्री 420 इसी वर्ष प्रदर्शित हुआ। इस साल धार्मिक विषय पर लगभग 15 फिल्में बनी।

26) **1956** : इस वर्ष 122 फिल्में बनी। इस वर्ष का उत्कृष्ट दिग्दर्शन का पुरस्कार व्ही. शांताराम को मिला।

27) **1957** : 115 फिल्मे इस वर्ष बनी। दो आँखे बारह हाथ, मदर इंडिया और नया दौर इसी वर्ष बनी।

28) **1958** : 114 फिल्में इस साल तैयार हुई। चलती का नाम गाडी इसी वर्ष बनी।

29) **1959** : इस वर्ष 115 फिल्में बनी। पहिली सिनेमास्कोप फिल्म 'कागज के फूल' इसी वर्ष बनी। नवरंग, सुजाता, अनाडी भी इसी वर्ष बनी।

30) **1960** : हिंदी फिल्म इतिहास में मील का पत्थर साबित हुई फिल्म 'मुगले आजम' इसी वर्ष बनी। पूरे भारत में एक साथ 150 स्थानों पर प्रदर्शित यह पहली फिल्म थी। इस साल 118 फिल्में बनी। फिल्मों के लिए आर्थिक सहायता देनेवाली संस्था एवं पुणे के फिल्म एवं टी.व्ही. इन्स्टिट्यूट की स्थापना इसी वर्ष हुई। संगीतकार आर.डी.बर्मन का आगमन इसी साल हुआ। इस साल सब तरफ मात्र मुगले आजम की ही धूम रही।

31) **1961** : इस वर्ष 204 फिल्में बनी। गंगा-जमुना, जिस देश मे गंगा बहती है यह हिट फिल्में इसी वर्ष बनी।

32) **1962** : इस साल 95 फिल्में बनी। साहब, बीबी और गुलाम को सर्वोत्कृष्ट फिल्म का पुरस्कार मिला।

33) **1963** : हिंदी मे इस वर्ष 90 फिल्में बनी। बंदिनी, ताजमहल, गुमराह, मुझे जीने दो, पारसमाणि आदि हिट फिल्मे इसी वर्ष बनी।

34) **1964** : 101 फिल्में इस वर्ष बनी। दोस्ती, संगम आदि संगीतमय हिट फिल्मे इसी वर्ष बनी। गुरूदत, महेबूब एवं शांता

आपटे इसी वर्ष चल बसे।

35) 1965 : 111 फिल्में इस साल प्रदर्शित हुई। गाईड, आरजू, वक्त, हिमालय की गोद में, काजल, खानदान, आदि फिल्में इसी वर्ष बनी।

36) 1966 : इस वर्ष 100 फिल्में बनी। सूरज, आम्रपाली, दिल दिया दर्द लिया, गबन, मेरा साया, तीसरी कसम आदि फिल्मे इसी वर्ष बनी।

37) 1967 : हिंदी में इस साल82 फिल्में बनी। इस वर्ष मिलन, उपकार, फर्ज, ज्वेलथीप, राम और श्याम, हमराज आदि हिट फिल्में बनी।संगीतकार रोशन, बाबुराव पेंढारकर, केशवराव भोले एव हेमेन गुप्ता आदि कलाकारों का इसी वर्ष देहांत हुआ।

38) 1968 : इस वर्ष हिंदी में 72 फिल्में बनी। ब्रह्मचारी, आशीर्वाद, आँखे, साथी, सरस्वतीचंद्र, संघर्ष इस वर्ष की हिट फिल्मे रही। मुख्यमंत्री जयललिता की एकमात्र हिंदी फिल्म 'इज्जत' भी इस वर्ष आई। पडोसन भी इसी वर्ष रीलीज हुई थी।

39) 1969 : इसी वर्ष 103 फिल्में बनी। आराधना, जीने की राह, आँसू बन गए फूल, आदमी और इन्सान इस साल की हिट फिल्में थी।

40) 1970 : इस वर्ष 102 फिल्में बनी। मेरा नाम जोकर, जॉनी मेरा नाम, पुरब-पश्चिम इस वर्ष की हिट फिल्में रही।

41) 1971 : 115 फिल्में इस वर्ष हिंदी में बनी। अमरप्रेम, मेरा गांव मेरा देश, पाकिजा, शर्मिली, हरे राम हरे कृष्णा इस वर्ष की हिट फिल्में रही।

42) 1972 : इस वर्ष हिंदी में 132 फिल्में बनी। परिचय, सीता और गीता, शोर आदि हिट फिल्में इसी वर्ष प्रदर्शित हुई।

43) 1973 : 137 फिल्में इस वर्ष प्रदर्शित हुई। अभिमान, बॉबी, जंजीर, दाग आदि इस वर्ष की हिट फिल्मे रही।

44) 1974 : इस साल 132 फिल्में बनी। कोरा कागज, रजनीगंधा, रोटी कपडा और मकान, आपकी कसम आदि हिट फिल्में इस साल प्रदर्शित हुई।

45) 1975 : 119 फिल्में इस साल बनी। यह वर्ष राजनीतिक क्षेत्र में आपातकाल तो फिल्म क्षेत्र में शोले और जय संतोषी माता के कारणों से चर्चा में रहा। छोटीसी बात, चुपके चुपके, मौसम, आँधी आदि भी इसी वर्ष प्रदर्शित हुई।

46) 1976 : इस वर्ष 110 फिल्में बनी। बैराग, फकिरा, लैला मजनू, महेबूबा, नागिन, चितचोर इस वर्ष की कुछ चर्चित फिल्में रही।

47) 1977 : इस वर्ष हिंदी की 144 फिल्मे बनी। किनारा, अमर अकबर ॲन्थोनी, घरौंदा, हम किसी से कम नहीं, पहेली इसी साल प्रदर्शित हुई।

48) 1978 : 120 फिल्में इस साल रिलीज हुई। सत्यम शिवम सुंदरम, डॉन, मुकद्दर का सिकंदर, कस्मे वादे, साजन बिन सुहागन, मै तुलसी तेरे आंगन की, दादा, विश्वनाथ आदि इस वर्ष की चर्चित फिल्में रही।

49) 1979 : 113 फिल्में इस वर्ष बनी। जानी दुश्मन, काला पत्थर, द ग्रेट गॅम्बलर, मि. नटवरलाल इसी वर्ष बनी थी।

50) 1980 : इस वर्ष 250 फिल्में बनी। आशा, इन्साफ का तराजू, शान, राम बलराम, द बर्निंग ट्रेन इसी वर्ष बनी थी।

51) 1981 : इस वर्ष 150 फिल्में रिलीज हुई। नसीब, सिलसिला, क्रांति, चक्र, प्यासा सावन, उमराव जान फिल्में इसी साल बनी थी।

52) 1982 : इस साल 155 फिल्में बनी। कुर्बानी, निकाह, विधाता, प्रेमरोग, नमक-हलाल आदि फिल्में इसी वर्ष बनी।

53) 1983 : इस वर्ष 135 फिल्में हिंदी में आई। सौतन, अंधा कानून, अर्धसत्य, अर्थ, बेताब, कुली आदि फिल्में इसी साल प्रदर्शित हुई।

54) 1984 : इस वर्ष 163 फिल्में बनी। छोटा चेतन नाम की पहली थ्री डी फिल्म इसी वर्ष बनी। शराबी, सारांश, स्पर्श, जाने भी दो यारो, तोहफा आदि फिल्में इसी वर्ष आई। दुर्गा खोटे को दादासाहब फालके पुरस्कार प्राप्त हुआ।

55) 1985 : इस वर्ष 190 फिल्में बनी। प्यार झुकता नही, राम तेरी गंगा मैली, सागर, उत्सव, मर्द, गुलामी आदि फिल्में इसी साल बनी।

56) 1986 : 160 फिल्में इस वर्ष बनी। इस साल हिंदी से भी ज्यादा फिल्में तेलगु में (192) बनी। मासूम, नगिना, नाचे मयुरी, एक चादर मैली सी,.नाम, कर्मा, आखरी रास्ता आदि इस वर्ष की सर्वाधिक चर्चित फिल्में रही।

57) 1987 : 150 फिल्में इस साल रिलीज हुई। मि.इंडिया, आग ही आग,पुष्पक, डकैत इस वर्ष की चर्चित फिल्में रही।

58) 1988 : हिंदी में इस साल 182 फिल्में बनी। तेजाब, प्रतिघात, हत्या, शहेनशहा, दयावान, कयामत से कयामत तक इसी साल बनी।

59) 1989 : इस वर्ष 176 फिल्में बनी। मैने प्यार किया, बटवारा, चांदनी, ईश्वर, निगाहें, परिंदा, रामलखन, त्रिदेव इसी वर्ष बनी।

60) 1990 : इस वर्ष 200 फिल्में बनी। आँधियाँ, अग्निपथ,आज का अर्जुन, घायल इस वर्ष की चर्चित फिल्में रही।

61) 1991 : हिंदी में इस वर्ष 215 फिल्में रिलीज हुई। साजन, प्रेमकैदी, पत्थर के फुल, हिना, दिल है कि मानता नही, हम आदि फिल्में इसी वर्ष बनी।

62) 1992 : इस वर्ष 192 फिल्में बनी। दिवाना, विश्वात्मा, शोला और शबनम, चमत्कार, बेटा, खुदा गवाह, दृष्टि, लेकिन, आदि फिल्में इसी वर्ष बनी। सत्यजित रे को इस वर्ष ऑस्कर अॅवार्ड मिला। और उनका देहांत भी इसी साल हुआ।

63) 1993 : इस वर्ष 183 फिल्में रिलीज हुई। खलनायक, बाजीगर, डर, आँखे इस वर्ष की कुछ चर्चित फिल्में रही।

64) 1994 : 155 हिंदी फिल्में इस वर्ष बनी। हम आपके है कोन, मोहरा, 1942 ए लव्ह स्टोरी आदि फिल्में इस वर्ष बनी।

65) 1995 : 160 फिल्में इस वर्ष रिलीज हुई। करण-अर्जुन, बॉम्बे, रंगीला, दिलवाले दुल्हनियाँ ले जाएंगे आदि फिल्में इसी वर्ष बनी।

66) **1996** : इस वर्ष 183 फिल्में बनी। बँडिट क्विन, प्रेमग्रंथ, पापा कहते है, अग्निसाक्षी, राजा हिंदुस्थानी आदि इस साल की चर्चित फिल्में रही।

67) **1997** : इस वर्ष 180 फिल्में बनी। दिल तो पागल है, बॉर्डर, हिरो नं.1 आदि इस वर्ष की कुछ हिट फिल्में रही।

68) **1998** : इस वर्ष 138 फिल्में बनी। कुछ कुछ होता है, बडे मियाँ छोटे मियाँ, सत्या, गुलाम, चायना गेट, सोल्जर, फायर आदि फिल्में इसी वर्ष बनी। सबसे ज्यादा सफलता 'टायटॅनिक' नामक विदेशी फिल्म को मिली जो हिंदी में डब रूप में भी आई थी।

69) **1999** : 154 फिल्में इस वर्ष रिलीज हुई। हम साथ-साथ है, दाग - दी फायर, कौन, कच्चे धागे, सुर्यवंशम, बीबी नं. 1, सिर्फ तुम, हम दिल दे चुके सनम, ताल, गॉडमदर, संघर्ष, 1947 अर्थ, वास्तव, आदि फिल्मे इसी वर्ष रिलीज हुई।

70) **2000** : इस वर्ष 217 फिल्में बनी। यह अब तक सबसे ज्यादा फिल्म बननेवाला वर्ष बना। कहो ना प्यार है, मोहबतें, बादल, जंगल, कुरूक्षेत्र, मिशन कश्मीर, फिजा, रेफ्युजी, हे राम, गजगामिनी, जोरू का गुलाम आदि फिल्में चर्चा में रही।

71) **2001** : कभी खुशी कभी गम, लगान, चांदनी बार, इंडियन इस साल की हिट फिल्में रही। इस वर्ष कुल मिलाकर 224 फिल्में बनी।

72) **2002** : देवदास, राज, साथियाँ, कंपनी इस साल की कुछ चर्चित फिल्में रही। इस वर्ष 230 फिल्मे बनी।

73) **2003** : कोई मिल गया, कल हो ना हो, मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस, पिंजर इस वर्ष सबसे चर्चित फिल्में रही। इस साल 190 फिल्में बनी।

74) **2004** : वीर जारा, मैं हूँ ना, धूम, लक्ष्य, स्वदेश इसी वर्ष रिलीज हुई। कुल 110 फिल्में बनी।

75) **2005** : ब्लैक, बंटी और बबली, सरकार, पहेली आदि इस वर्ष की चर्चित फिल्में रही। इस साल 145 फिल्मे बनी।

76) **2006** : फना, रंग दे बसंती, क्रिश, फिर हेराफेरी, गोलमाल, ओंकारा इस वर्ष की हिट फिल्में रही। 148 फिल्मे बनी।

77) **2007** : इस वर्ष 260के उपर फिल्में बनी। चक दे इंडिया, जब वी मेट, तारे जमीं पर आदि प्रमुख फिल्में रही।

78) **2008** : कुल 145 फिल्में बनी। सिंग इज किंग, गजनी, जोधा अकबर, भूतनाथ, आदि चर्चित फिल्में इसी वर्ष बनी।

79) **2009** : इस वर्ष लगभग 99 फिल्में बनी। जिसमे 3 इडियट, लव आज कल, कमीने आदि हिट फिल्में रही।

80) **2010** : 126 से अधिक फिल्में इस वर्ष बनी। रोबोट, जैसी बिग बजेट वाली फिल्म इसी वर्ष रिलीज हुई।

81) **2011** : इस वर्ष 110 से अधिक फिल्में बनी। रा-वन, डॉन-2, रागिनी एमएमएस इस वर्ष की प्रसिद्ध फिल्में रही।

82) **2012** : 103 से अधिक फिल्में अबतक रिलीज हुई है। विकी डोनर, पानसिंग तोमर, बर्फी, ओ माय गॉड, जब तक है जान आदि अब तक की हिट फिल्में है।

हिंदी फिल्मों के इतिहास में अर्थात 1913 से लेकर आजतक कुछ ऐसी घटनाएँ भी है जिनका असर इस फिल्म सृष्टि पर पडा है। उनका भी उल्लेख करना यहाँ पर आवश्यक है। समय-समय पर हुए परिवर्तनों ने हिंदी फिल्मों ने अनेक करवटें लेकर आज यह मुकाम हासिल किया है। मूक से सवाक, कृष्णधवल से रंगीत, इस्टमन कलर से सिनेमास्कोप, 16 एम.एम से 35 एम.एम., सरकार का फिल्मों के निर्माण में दखल, फिल्म से संबंधित विभिन्न संस्थाओं का स्थापन होना। सेंसार बोर्ड से लेकर राष्ट्रीय पुरस्कार की घोषणा। आदि बातें इसी परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण है। देश विभाजन, म.गांधी की हत्या, आपातकाल, फिल्म से संबंधित लोगों का राजनीति में आना, भूमंडलीकरण-बाजारवाद-आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया में पूराने सिंगल थिएटरों का बंद होना और मल्टीप्लेक्स का शुरू होना, फिल्म को कला की नजर से नहीं एक व्यवसाय-उद्योग की नजर से देखना ऐसी बातें है। जिनसे इस फिल्मी सफर में काफी उतार-चढाव आया। फिल्में कभी मनोरंजन, सामाजिक सुधार का काम करती थी वह फिल्में अब मात्र नफा-नुकसान के कार्यतंत्र पर चलने लगी। सस्ते मनोरंजन, सेक्स, मारधाड, हिंसा, क्रुरता, प्रेम से संबंधित छिछोरापन ही फिल्म सफल होने का मानदंड बनने लगा।

फिल्म उद्योग को आगे बढाने में काफी-घटकों-संस्थानों का स्थान रहा हैं। फेडरेशन ऑफ फिल्म सोसायटीज, फिल्म फायनेंस कॉर्पोरेशन, भारतीय फिल्म संस्था, भारतीय राष्ट्रीय फिल्म अभिलेखागार, फिल्म फेडरेशन ऑफ इंडिया, सिनेमैटोग्राफ एक्ट - 1918 और बाद में इंडियन सिनेमैटोग्राफ एक्ट - 1952, डॉक्युमेंन्ट्री फिल्म युनिट - इंडिया, भारतीय मोशन पिक्चर्स प्रॉड्यूसर्स एसोशिएशन आदि वे संस्थाएँ रही है।

1947 के भारत-पाक विभाजन से पूर्व भारत में लगभग 60 स्टुडियो थे। विभाजन के पश्चात पाकिस्तान में चार तथा भारत में 56 रह गए। लगभग 2202 सिनेमाघरों में से 230 पाकिस्तान में चले गए। शेष यहीं रह गए। इसके अतिरिक्त प्रदर्शन क्षेत्र भी सीमित हुए और कलाकार भी बिखर गए। कुछ पाकिस्तान चले गए। इस तरह चित्रपट उद्योग बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया।[1]

1974 में दूरदर्शन द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों के प्रसारण का भी इस फिल्म व्यवसाय पर धीरे-धीरे असर होने लगा। सन 1980 में पूरे देश में लगभग 6368 स्थायी सिनेमाघरों और 4024 अस्थायी टूरिंग सिनेमाघरों का निर्माण किया जा चुका था। भारत में बननेवाली सभी फिल्मों को देखे तो सभी भारतीय भाषाओं में मिलकर बनी फिल्मों की संख्या 1985 तक लगभग 25,000 तक पहुँच गयी थी। आज भारत दुनिया में सबसे अधिक फिल्में बनाने वाला देश है। और मुझे नहीं लगता आगामी कुछ वर्षों तक कोई भी देश इस मामलें में भारत से आगे जाएगा।

+ + +

---

1. भारतीय चित्रपट, महेन्द्र मित्तल, पृ. 42

द्वितीय अध्याय
फिल्मांकन की प्रक्रिया

किसी भी चीज के निर्माण की अपनी एक प्रक्रिया होती है, यह बात फिल्मों के बारे में भी लागू पडती है। जो बात हम पर्दे पर जाकर एकसे तीन घंटे के बीच देखकर आनंदित होते है उसे बनाने की प्रक्रिया कितनी जटिल एवं खर्चीली है, उसे उसके बनाने के प्रक्रिया से ही जाना जा सकता है। किसी एक थीम को लेकर, सैकडों कलाकारों का समय एक साथ साधकर, सैकडों तकनीशियों के सहयोग से फिल्म बनाना काफी दूष्कर कार्य है। इस दूष्कर कार्य को यहाँ हम समझने का प्रयास करेंगे-

किसी फिल्म के निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया में लेखन, निर्माण तथा निर्देशन अति महत्वपूर्ण है। ये तीनों कार्य किसी एक व्यक्तिद्वारा भी किए जा सकते है अथवा अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा फिर एक ही कार्य कई व्यक्तियों द्वारा भी किए जा सकते है, जैसे कई व्यक्ति मिलकर फिल्म का निर्माण कर सकते है या कई लेखक एक साथ सामूहिक रूप से फिल्म का लेखन कर सकते है। फिल्म की कहानी, पटकथा एवं संवाद भी अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा लिखा जाना सामान्य है परंतु ये असम्भव है कि कई व्यक्ति मिलकर फिल्म का निर्देशन करें। फिल्मांकन की इस प्रक्रिया को निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता -

1. निर्देशक (Director)
2. निर्माता (producer)
3. निर्माता-निर्देशक (producer-Director)
4. लेखक निर्देशक (Writer-Director)
5. लेखक-निर्माता (Writer-Producer)
6. लेखक-निर्माता-निर्देशक (Writer - Producer-Director)
7. विभिन्न तकनीशियन
8. अन्य

इन श्रेणियों में यह देखा जा सकता है कि एक व्यक्ति के पास विभिन्न कार्यों का अनुभव एक साथ हो सकता है। परंतु एक जहाज के कप्तान या वाद्यवृंद के संयोजक की तरह एक निर्देशक का किसी फिल्म के निर्देशन में संपूर्ण अधिकार होना चाहिए। फिल्म की शूटिंग फिल्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। कभी-कभी एक निर्देशक सिर्फ फिल्म निर्देशन तक ही अपने आपको सीमित कर देता है, एक निर्माता पटकथा लिखने तक की पूरी जिम्मेदारी अपने उपर ले लेता है। निर्देशक का काममात्र शूटिंग करना होता है। सम्पादन काल में निर्देशक का सहयोग सिर्फ रफ कट (Rough cut) तक ही होता है, इसे डायरेक्टर्स कट (Directors cut) भी कह सकते है। इसके पश्चात निर्माता - संपादक के द्वारा फिल्म का फाइनल कट (Final cut) करवाकर फिल्म पूरी कर देता है। इस दशा में यह संभव है कि फाइनल कट निर्देशक के कट से बिल्कूल, अलग हो। किसी फिल्म के निर्माण मे फिल्म निर्देशक का महत्व निर्माण में उसकी भागीदारी अथवा सहयोग से प्रतिशत पर भी निर्भर करता है।[1]

---

1. फिल्म निर्देशन - कुलदीप सिन्हा, पृ. 16

किसी भी ध्वनी-दृश्य माध्यम (Audio Visual Mediarm) में निर्देशन की मूल तकनीकियाँ समान होती है। यदि अन्तर होता है तो मुख्य विषयवस्तु पर जो मुद्रण (Recording) के माध्यम, प्रस्तुतीकरण, प्रदर्शन की विभिन्न परिस्थितियाँ तथा दर्शकों (Viewing conditions) की संख्या पर आधारित है। पहले फिल्म की शूटिंग सिर्फ एक कॅमेरे से की जाती थी और उसका परिणाम तथा गुणवत्ता जानने के लिए निर्देशक तथा छायाकार को रशेज (Rushes) आने तक प्रतीक्षा करनी पडती थी। यदि कुछ गलत हुआ तो फिर उसी 'शुटिंग' की पुनर्रावृत्ति करनी पड़ती थी। आज फिल्म शूटिंग के लिए कई कैमेरों का प्रयोग (Multipal camera set up), रिफ्लेक्स व्यूफाइंडर इमेज (Reflex view finder Images) को एक मॉनीटर पर उसी समय देखा जा सकता है या उसे रेकार्ड करके बार-बार प्लेबॅक किया जा सकता है। इस प्रकार निर्देशक या छायाकार को 'रशेज' आने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। कुछ गलत होने पर उसी समय पुन: शुटिंग कर ली जाता है इस तकनीक में फिल्म निर्माण में होनेवाले समय तथा धन दोनों की ही बचत होती है। कई कैमरों के प्रयोग के समानान्तर रूप से सम्पादन भी किया जाता है। दृश्य संयोजन, (vision mixer) में एक कैमेरे के दृश्यों से दूसरे कैमरे के दृश्यों तक आवश्यकतानुसार पहुँचा जा सकता है। इन्हें पूर्ण रूप में एक साथ शूटिंग करके बाद में भी सम्पादित (Edit) किया जा सकता है।

यह एक सामान्य धारणा है कि किसी भी सांस्कृतिक या रचनात्मक अभिव्यक्ति का संम्पूर्ण श्रेय मात्र एक व्यक्ति को होता है, जैसे किसी कलाकृति के लिए कलाकार का किसी कहानी, उपन्यास, काव्य आदि के लिए लेखक। फिल्म माध्यम के आरम्भ में जब मूक फिल्में बनती थीं जो एक नए माध्यम का प्रयोगात्मक एवं शैशवकाल था, तब ल्यूमिएर बंधुओ नें जिन फिल्मों का निर्माण किया वह रचनात्मक अभिव्यक्ति कम थी बल्कि किसी घटना की उसी रूप में चलचित्र रूप में प्रस्तुति अधिक थी। दर्शकों के सम्मुख चलती-फिरती आकृतियाँ एक विशेष आकर्षण का केन्द्र थी। इन फिल्मों के लिए न तो लेखक होते थे और न ही सम्पादक न ध्वनिमुद्रक। कई बार निर्देशक स्वयं ही कैमरा चलाया करते थे। फिल्मों के विकास के प्रथम दशक में अधिकतर फिल्मों का निर्माण एक व्यक्ति के अथक परिश्रम और कल्पना का ही परिणाम होता था।

विकास की सीढियाँ पार करते हुए आगे चलकर एक्शन दृश्य (Action Sequence) की कल्पना करके फिल्म का निर्माण किया गया। और फिल्मों के पर्दे पर सोच-विचार कर तैयार की गई कथावस्तु (storyline) को प्रस्तुत करके अपनी विशिष्ट सूझबूझ का परिचय दिया। इस दृश्य को अलग-अलग टुकड़ो (shots) में शूट करके समय तथा क्रम के अनुसार जोड़कर एक नई तकनीक फिल्म सम्पादन (Film Editing) का आरंभ किया गया। एक शॉट में छायांकित छायाचित्रों में निहित स्थान (space) तथा उसके तत्त्वो (Elements) की गहनता (Depth) का विश्लेषण करके उन्हें अन्य शॉट से दूसरे शॉट को जोडने की प्रक्रिया में निरंतरता (Continuity) समय, स्थान तथा वांछित प्रभाव (Desired Effects & Feelings) पर मुख्य ध्यान दिया गया। फिल्म माध्यम के द्वारा किसी निश्चित कथावस्तु को प्रभावपूर्ण तरीके से कहने की विधा का (Narrative form) अविष्कार किया जो आज भी फिल्मों की कथावस्तु कहने की प्रचलित विधा (Form) है।

मूल रूप से फिल्म निर्देशक का माध्यम है जिसमें निर्देशक का कार्य फिल्म निर्माण की योजना बनने के साथ ही आरम्भ हो जाता है। निर्देशक सर्वप्रथम सुनिश्चित फिल्म की कथा को आत्मसात करता है और फिर पटकथा लेखन से लेकर फिल्म निर्माण के प्रत्येक विभाग से संबंधित कार्यों को अपनी कल्पना, रूचि तथा विचारधारा के अनुरूप एक योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार करता है जिसके पश्चात एक-एक कर फिल्म निर्माण के विभिन्न पडाव पार करता है। तकनीकी रूप से हर क्षेत्र में निर्देशक की कल्पनाशीलता का प्रभाव होता है। यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि फिल्म के पर्दे पर स्वयं कुछ भी नहीं होता, सब कुछ कराया जाता है। वह मूल रूप से कथा एवं दृष्य की आवश्यकता के अनुसार ही होता है। किसी विशेष दृश्य में किसी विशेष प्रभाव के लिए निर्देशक विशेष रंगयोजना, प्रकाशव्यवस्था, साज-सज्जा, अभिनय व संवादोच्चारण का सुझाव दे सकता है जिसे कार्यान्वित करने के लिए उसके तकनीकी सहयोगी भरपूर प्रयत्न करते है। इस मार्गदर्शन के लिए निर्देशक के पास फिल्म की तकनीकी ज्ञान-सम्पदा होने के साथ समाज, देश रीति-रिवाज धर्म एवं संस्कृति, विभिन्न सामाजिक समूहों तथा व्यक्तियों के

व्यवहार, सोच विचार तथा रहनसहन आदि का ज्ञान होना भी आवश्यक है ताकि वह कथा के चरित्रों तथा दर्शकों की भावनाओं तथा संवेदनाओं के साथ सामंजस्य कर सकें।

अधिकतर लोगों का मानना है कि फिल्म तकनीक किसी भी रचनात्मक अभिव्यक्ति का एक प्राकृतिक माध्यम है क्योंकि फिल्म कला का आधार अन्य सभी कलाओं का संगम है परंतु फिल्म निर्माण के लिए फिल्म तकनीक की जानकारी उतनी ही आवश्यक है जितनी किसी साहित्यकार के लिए भाषा का ज्ञान अथवा किसी संगीतज्ञ के लिए सुर, ताल, एवं लय का ज्ञान। फिल्म निर्माण में तकनीकी जानकारी जरूरी है परंतु इसकी अधिकता कथ्य की प्रभावशाली अभिव्यक्ति में बाधक होती है, इसीलिए अधिकतर फिल्मकार स्वयं को फिल्म तकनीशियन नहीं मानते। फिल्म निर्माण में उपयुक्त विभिन्न तकनीकें किसी अभिव्यक्ति को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाने की प्रक्रिया में मात्र एक-एक यंत्र की भूमिका निभाती है, चाहे वह छायाकार हो, कला निर्देशक हो, सेट डिजाइनर हो या विशिष्ट प्रकाशव्यवस्था आदि हो। तभी एक निश्चित गतव्य के लिए कार्य करते है। यह गंतव्य है प्रत्येक दृश्य को कहानी के अनुसार अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाना न कि अपने-अपने विभाग से संबंधित तकनीकी श्रेष्ठता का प्रदर्शन करना।

फिल्म निर्माण की योजना बनाने के साथ ही सबसे पहला तथा प्रमुख कार्य होता है फिल्म की लागत तैयार करना यह एक विशेष कार्य है जो किसी भी निर्माता या निर्देशक के द्वारा अकेले नहीं किया जाता। इस कार्य में फिल्म की कहानी के अधिकार खरीदने से लेकर पटकथा लेखन, गीत-संगीत, कलाकार तथा सहयोगी तकनीशियन, शूटिंग तथा शूटिंग के पश्चात प्रयोग होनेवाले साजो-सामान तथा उपकरण से लेकर फिल्म का प्रचार-प्रसार, विज्ञापन तथा प्रदर्शन तक के सारे व्ययों का आकलन किया जाता है और यह कार्य अकेले निर्माता या निर्देशक के बस का नहीं है, इसके लिए अनुभवी फिल्म लेखाकार या निर्माण प्रबंधक (production manager) का सहयोग लिया जाता है।

फिल्म निर्माण प्रक्रिया आरंभ से आज तक कभी समान नहीं रही है। 1910 के दशक में फिल्म बनाने की प्रक्रिया, बाद में मूक फिल्मों से सवाक् फिल्में बनाने की प्रक्रिया, कृष्णधवल से रंगीन चित्रपट बनाने की प्रक्रिया, 16 एम.एम.से 32 एम.एम. उसके बाद सिनेमास्कोप और अभी डिजीटल युग में फिल्म बनाने की प्रक्रिया अलग-अलग करवटें लेती रही है। प्रारंभ में एक व्यक्ति यह सब काम करता था, आगे चलकर स्टूडियो या कंपनी सिस्टम आया। फिल्म निर्माण की प्रक्रिया में तीन बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गई है। एक है रचनात्मकता, दूसरी व्यावसायिकता, और अद्यतन काल में स्टार सिस्टम याने किस कलाकार को लेकर आप फिल्म बनाने वाले है। यही तीन बाते फिल्म की सफलता/असफलता निश्चित करती है।

सिनेमा कला एवं अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। सिनेमा समाज से प्रभावित होकर कई प्रकार के सामाजिक उत्तरदायित्वो की पूर्ति में अत्यधिक प्रभावशाली माध्यम भी है। अपने इन्ही दायित्वों के सफल कार्यान्वयन में सिनेमा के कई प्रारूप (forms) सामने आए है जिनमें कलात्मकता एवं व्यक्तिगत अभिव्यक्ति मुखर होती है। सिनेमा के प्रमुख प्रकारों मे वृत्तचित्र, विज्ञापन फिल्में, प्रयोगात्मक चित्र एवं कथा चित्र प्रमुख है। इसके अतिरिक्त शैक्षिक फिल्में भी महत्त्वपूर्ण है। बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थान अपने संस्थान एवं उत्पादों के प्रचार व प्रसार के लिए 'प्रचार फिल्मे' बनाते है। कार्टून फिल्में (Animation films) भी सिनेमा की एक महत्वपूर्ण विश्व है जिसमें कलात्मक तरीके से रचित बनावटी चरित्रों (Cartoons) के द्वारा कथा एवं सूचना का प्रसार किया जाता है।

फिल्म निर्माण की प्रक्रिया के घटक :

1) **प्रकाश व्यवस्था :** छायांकन तकनीक में प्रकाश व्यवस्था का विशेष महत्त्व देता है। चलचित्र में एक्सपोजर (Exposer) का निर्णयदृश्य की आवश्यकता, निर्देशक तथा छायाकार की विशेष शैली एवं प्रकाश-व्यवस्था के अतिरिक्त प्रयोग की जानेवाली फिल्म की गति के आधारपर किया जाता है। स्टूडियों में प्रकाश-व्यवस्था के लिए ऊँचाई पर स्थित रैक (Racks) तथा नीचे स्टैंड (stands) का उपयोग किया जाता है। बाह्य शूटिंग में परावर्तक (Reflectors) का प्रयोग किया जाता है। सम्पूर्ण

शूटिंग के दौरान हर शॉट में प्रकाशस्थिरता (consistancy of Tone) बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि हर शॉट की प्रकाश व्यवस्था में फिल्म पर पडनेवाले प्रकाश की मापतौल (Measurement of Light Exposur) रखी जाए। इस कार्य के लिए एक विशेष प्रकाश मापक यंत्र (Light Meter of Exposure meter) का प्रयोग किया जाता है। प्रकाश-मापन रंग तापमान (colour Temperature) के लिए भी किया जाता है। विभिन्न प्रकार के रंगों में संतुलन बनाए रखने के लिए कई प्रकार के रंगीन फिल्टर (colour filters) होते है।

2. ध्वनि अंकन : फिल्म निर्माण में छायांकन के समकक्ष ही ध्वनि अंकन का महत्व होता है। दृश्य में प्रभाव के लिए अलग-अलग प्रकार की ध्वनिया (sounds) होती है; जैसे संवाद, ध्वनि प्रभाव (sound Effects) संगीत आदि। इन सभी ध्वनि प्रकारों का संतुलित समाजयोजन (Syschornisation) दृश्य को पूर्णत: प्रदान करता है। आज ध्वनि अंकन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास हुआ है। ध्वनि के विशेष प्रयोग से विशेष प्रभाव उत्पन्न तथा शूटिंग पश्चात ध्वनि समायोजन में विभिन्न प्रयोग किए जा सकते है। शूटिंग के दौरान ध्वनि अंकन निम्नोक्त तरीके से किया जाता है-

(i) सिंगल सिस्टम रिकॉर्डिंग (Single Sysem Recording) : इस प्रकार की रिकॉर्डिंग में एक ही कैमरे में फिल्म के साथ ध्वनि अंकित होती है।

(ii) डबल सिस्टम रिकॉर्डिंग (Double System Recording) : इस प्रक्रिया में शूटिंग से फिल्म के समापन तक दृश्य तथा ध्वनि अलग होते है। इस प्रकार ध्वनि के विभिन्न प्रयोग तथा प्रभाव उत्पन्न करने में रिकॉर्डिस्ट की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। आजकल प्रचलित नई तकनीक के अनुसार डिजिटल स्लेट (Digital slate) का प्रयोग किया जाता है। इसमें फिल्म पर ध्वनि तरंगे प्रकाश के रूप में ध्वनि पट्टी (Sound Track) पर अंकित हो जाती है तथा समानांतर रूप में टेप पर भी अंकित हो जाती है, जिन्हें मिलान कर दृश्य तथा ध्वनि में पूर्ण मेल (Perfect Synchronisation) प्राप्त किया जाता है।

रिकॉर्डिस्ट का शूटिंग के समय मुख्य कार्य एवं उत्तरदायित्व होता है, शॉट में सुनाई देनेवाली हर ध्वनि एवं संवादों को शोररहित रिकॉर्ड करना ताकि हर ध्वनि साफ सुनाई दे। पार्श्वकथन (Background Nurration) , विशेषध्वनि प्रभाव (Special Sound Effects) तथा पार्श्वसंगीत आदि को बाद में भी रिकॉर्ड किया जा सकता है। शूटिंग के समय ध्वनि की उच्च गुणवत्ता (quality) प्राप्त करने के लिए रिकॉर्डिस्ट ध्वनि स्तर (Sound Levels) , माईक्रोफोन का समुचित स्थापन (Placement) तथा विभिन्न प्रकार के ध्वनि संकेतों का उचित समायोजन (Mixing) करता है। शेष तकनीकी उत्कृष्टता (Technical Excellence) के लिए शूटिंग पश्चात की जानेवाली रिकॉर्डिंग जैसे डबिंग (Dobbing) , संगीत तथा विशेष ध्वनिप्रभाव एवं पुनर्ध्वनि समायोजन (Re-Recording or mixing) के समय प्राप्त की जाती है। दृश्य के वातावरण (Ambience) में निरंतरता बनाए रखने के लिए रिकॉर्डिस्ट को शॉर्ट में होनेवाली हर बेमेल ध्वनिप्रभाव (Non-Synchronous Sound Effects) को भी रिकॉर्ड किया जाता है।

3) फिल्म संपादन : शूटिंग के पश्चात किए जानेवाले कार्य (Post Production Activities) सामान्यत: शूटिंग की तुलना मे अधिक समय लेते है। इस अवस्था में फिल्म सम्पादन, जिसमें दृश्य तथा ध्वनि का संपादन किया जाता है, विशेष दृश्य प्रभाव, विशेष ध्वनी प्रभाव, टाईटल्स, ध्वनि समायोजन, संगीत आदि आयोजित या रिकॉर्ड किए जाते है। शूटिंग के बाद कैमरे में शूट की हुई कच्ची फिल्म (Exposed film) को-प्रयोगशाला में डेवलप तथा प्रिन्ट करने के लिए भेजा जाता है, जहाँ से पिक्चर निगेटिव्ह (Picture Negative) को डेवलप करके एक पिक्चर पॉजिटिव्ह प्रिन्ट तैयार किया जाता है। जिसे रेश प्रिन्ट या वर्क प्रिन्ट कहते है। इस प्रिंट के एक ओर हर फुट पर छपे हुए नम्बर (Key Numbers) निगेटिव्ह कटिंग के लिए उपयोगी होते है। निगेटिव्ह कटर प्रिन्ट में छपे हुए नम्बरों को निगेटिव्ह के समानान्तर रखकर सम्पादित रशप्रिन्ट के अनुसार निगेटिव्ह काटता है।

फिल्म संपादक सर्वप्रथम रश प्रिन्ट के दृश्य क्रमांक के अनुसार शॉटस् को अलग-अलग छाँटता (Sorting) है। उसके पश्चात हर शॉट के आरम्भ में लिए हुए क्लैप (clap) को 35m.m. मैगनेटिक टेप (Megnatic Tape) या उसी चौड़ाई के अन्य

माध्यम जैसे ऑप्टीकल साऊंडट्रैक (Optical Sound Track) में उपस्थित क्लैप ध्वनि को समानांतर रूप से मिलाकर (Parallel Synchronisation) सम्पूर्ण शॉर्ट के दृश्य एवं ध्वनि का मिलान कर दिया जाता है। दृश्य एवं ध्वनि का मिलान करके के लिए शूटिंग के समय 1/4" के टेपपर रिकॉर्ड की गई सभी ध्वनियों की फिल्म की चौड़ाई के समान उसी चौड़ाई (Gauge) के टेप तथा गति में परिवर्तित (Transfer) किया जाता है। फिल्म (Cellvloid) की सामान्य प्रदर्शन गति (Standard Running Speed) 24 फ्रेम प्रति सेकंड होती है।[1] प्रचलित प्रथा के अनुसार प्रतिदिन भी शूटिंग समाप्त होने के पश्चात निर्देशक तथा छायाकार अपने सहयोगियों के साथ रश प्रिन्ट (Rushes) देखने है ताकि शूटिंग के दौरान किसी शॉट में हुई त्रुटियों को अगले दिन की शूटिंग में सुधारा जा सके।

अपने कार्य के आरम्भ में फिल्म सम्पादक सभी शॉट को दृश्य के अनुसार छाँटकर अलग रखता है, फिर उन्हें पटकथा में लिखित दृश्यों के क्रमानुसार लगाया (Assemble) जाता है। इस प्रक्रिया में निर्देशक तथा छायाकार के शॉर्ट के कई टेक (Takes) में से सर्वश्रेष्ठ टेक (Best Take) का चयन करके दृश्य की निरंतरता के अनुसार संयोजित किया जाता है। दृश्य का संपादन करते समय पात्रों की अभिनव गुणवत्ता, ताल एवं लयँ, कॅमेरे के कोण एवं स्थिति, ध्वनि तथा छवि (Images) के बीच संबंध आदि का ध्यान रखा जाता है। कार्य प्रिन्ट (Work Print) पर कार्य करते समय दृश्य में अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए निर्देशक एवं संपादक कुछ विशेष निर्णयों के अनुसार दृश्य तथा ध्वनि में फेरबदल भी करते है जिसे कैमरे के द्वारा कर पाना सम्भव नहीं होता। ये कार्य नामांकन (Tritles) से कम्प्यूटर द्वारा उत्पन्न विशेष प्रभाव तक सम्पन्न किए जाते है। कुछ रचनात्मक प्रभाव (creative effects) विशेष प्रयोगशाला में उत्पन्न किए जाते है।

4) ध्वनि संपादन एवं पुनर्मुदण : शुटिंग के दौरान संवादों के रूप में ध्वनि रिकॉर्ड की जाती है। शेष ध्वनि प्रभाव, संगीत आदि शूटिंग पश्चात (Post shooting) किए जानेवाले संयोजन तथा अंकन (Recording) में रचित किए जाते है। लोकेशन पर की गई अधिकतर रिकॉर्डिंग आसपास के वातावरण तथा अनचाहे शोर से दूषित होती है। अत: इस रिकॉर्डिंगको मार्गदर्शक (Guide Track) के रूप में प्रयोग किया जाता है। उसके के अनुसार संवाद डबिंग (Dubbing) की जाती है जिसमें अभिनेता या डबिंग कलाकार (Dubbing Artist) पर्दे पर दृश्य का अवलोकन कर मार्गदर्शक ध्वनि को सुनते हुए संवाद पुनर्उच्चारित करता है और दृश्य में अभिनेता द्वारा संवादों में हिलाए गए होठों (Lip movement) के अनुरूप ध्वनि का मिलान (Synchronisation) करता है। डबिंग मे दृश्य एवं ध्वनि को आवश्यकतानुसार उपर-नीचे (Rock & Roll) किया जाता है। इस प्रक्रिया में छबि तथा ध्वनि एक ही मानक गति से चलते है जिहे साथ-साथ बंधित (Interlock) कर दिया जाता है। इस प्रकार दृश्य के संवादो को पुनर्उच्चारित (Dubbing) करके अनचाही ध्वनियों को निकाल दिया जाता है और हमें एक साफ-सुथरी ध्वनि (Cleansand Track) प्राप्त होती है।

संवादों के अतिरिक्त दृश्य में सुनाई देनेवाली सभी ध्वनियाँ, प्राकृतिक ध्वनियाँ तथा संगीत आदि ध्वनी के विशेष प्रभाव कहलाते है। इन विशेष प्रभावों द्वारा दृश्य को विशेष भाव (moods) प्रदान किए जाते है। अधिकतर ध्वनिप्रभाव या तो विशेष प्रकार की लाइब्रेरी (Effects Library) में संग्रहीत होते है। अन्यथा उन्हें दृश्य के अनुरूप विशेष परिस्थितियों का निर्माण कर रचा जाता है। जैसे चलने की आवाज विशेष स्थल पर किसी व्यक्ति को उसी प्रकार चलाकर रिकॉर्ड करना। इस तरह के प्रभावों को (Incidental Effects) कहते है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रभाव ऐसे होते है जो संपूर्ण दृश्य का अंग होते है, जैसे वायु प्रवाह, जल प्रवाह, आवागमन आदि। इन प्रभावों का प्रयोग दृश्य को प्राकृतिक स्वरूप (Natural form) देने के लिए किया जाता है। अत: इन ध्वनि प्रभावों को प्राकृतिक अथवा सामान्य ध्वनिप्रभाव कहा जाता है। इन सभी विभिन्न प्रकार की ध्वनियों को दृश्य के साथ मिलाकर (match) अलग-अलग ट्रैक बनाए जाते है तथा इन ट्रैक को पुनर्ध्वनि मुद्रण (Re-Recording) के लिए आवश्यक

---

1. फिल्म निर्देशन, कुलदीप सिन्हा, पृ. 40

संकेत (Markings) तथा तालिकाएँ (Dore sheets) तैयार की जाती है।

रि-रिकार्डिंग या मिक्सिंग विशेष प्रकार के रिकॉर्डिंग थिएटर में की जाती है जहाँ कई ट्रैक अलग अलग एवं एक साथ चलाने की सुविधा होती है। इस प्रक्रिया में रिकार्डिस्ट दृश्य की आवश्यकतानुसार ध्वनि प्रभाव, संगीत एवं संवाद आदि के लेबल तथा स्पष्टता को अलग-अलग नियंत्रकों द्वारा संयोजित करता है। ध्वनिप्रभाव, संगीत तथा अन्य पार्श्व ध्वनियों (Background Sounds) को मिक्स करके एक अलग मिश्रित ध्वनि ट्रैक जिसे इंटरनॅशनल ट्रैक कहते है, बनाया जाता है। इस ट्रैक का उपयोग फिल्म को मूलभाषा तथा अन्य भाषाओं मे रूपांतरित करने के लिए किया जाता है। इंटरनॅशनल ट्रैक में ध्वनिमुद्रित होने के पश्चात उसमें मूलभाषा या अन्य भाषाओं के संवाद मिक्स किए जाने से हमें फिल्म का अंतिमरूप (Final Sound Track) प्राप्त होता है जिसे साउंड निगेटिव्ह (Sound Negative) में ट्रान्सफर करने के बाद अंतिमध्वनि का निगेटिव्ह में ट्रान्सफर करने के बाद ध्वनी का अन्तिम निगेटिव्ह (Final Sound Negative) प्राप्त होता है। यह साऊंड निगेटिव्ह फायनल पिक्चर निगेटिव्ह के साथ प्रिन्ट होकर प्रथम प्रदर्शन प्रिन्ट (First Answer Print or Release Print) के रूप में हमे प्रयोगशाला में प्राप्त होता है। चूँकि यह प्रयोगशाला से निकला हुआ प्रथम प्रिन्ट होता है। अत: इसमें कहीं कहीं दृश्य तथा ध्वनि की गुणवत्ता में सुधार की संभावना बनी रहती है। इसलिए इस प्रिन्ट के आधारपर बाद में बननेवाले सभी प्रिन्टों में अच्छी गुणवत्ता लाने के लिए सुधार (corrections) किए जाते है। इस कार्य में मुख्य दायित्व सामान्यत: छायाकार एवं प्रयोगशाला तकनीशियनों का ही होता है। दृश्य एवं ध्वनि के इस 'सम रूप प्रिन्ट' को मैरीड प्रिन्ट (Married Print) भी कहा जाता है। यही प्रिन्ट सिनेमाघरों में प्रदर्शन हेतु भेजे जाते है।

5) पटकथा : पटकथा सिनेमा का मूल आधार है। अगर सिनेमा को एक 'स्ट्रक्चर' माने तो पटकथा उसका 'प्लान' है। पटकथा के बारे में स्पष्ट करना आवश्यक है कि वह लेखकीय कर्म है, पर लेखन-विधा नही। सिनेमा लिखना पटकथा लिखना है, यानी सिनेमा में जो कुछ भी होगा उसे कागजपर लिखना - ठीक उसी तरह जैसे आमद-खर्च का हिसाब रखना। फिल्मी पटकथा लिखने के लिए यह जरूरी है कि पटकथाकार भी लिखी जानेवाली फिल्म का पुर्वावलोकन (Pre-visualisation) कर ले। तभी वह अपेक्षित फिल्म में होनेवाली घटनाओं का क्रमवार वर्णन कर पाएगा। पटकथा के लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य यही है कि फिल्म को कथानक के अनुरूप दृश्य-दर-दृश्य विकसित करे और उसके हेतु तक ले जाए। फिल्म अपने हेतु तक पहूँचने से पहले दर्शक में उत्सुकता जगाए रखे और दर्शक को अंतिम दृश्य तक फिल्म में रोके रखें। इसके लिए पटकथा में कुछ तणाव या चिंता के क्षण आरोपित किए जाते है जिसे फिल्म की भाषा में सिनेमाई 'पंच' कहते है।

पटकथा वास्तव में फिल्म का अस्थिपिंजर (स्केलेटन) है। फिल्म बनने की प्रक्रिया में इसमें मांस पेशियाँ, उदर, श्वास तंत्र जुड़ते है और हँसती-बोलती-गाती फिल्म तैयार होती है। वैसे मात्र पटकथा फिल्म का प्रारंभिक रूप नहीं होता। फिल्म की उपज के कई स्तोत्र होते है - कभी कोई कहानी प्रेरणास्तोत्र होती है, कभी कोई उपन्यास, कभी कोई घटना फिल्म का रूप ले लेती है, कभी मात्र कोई विचार। परंतु फिल्म बनने से पहले पटकथा का होना आवश्यक है।

क्योंकि इसमें विशेष भाषा का ज्ञान अथवा लेखकीय कौशल से अधिक फिल्म की पूर्वकल्पना का ज्ञान होना अधिक जरूरी है, अत: पटकथा का काम हर वह व्यक्ति कर सकता है जो अपेक्षित फिल्म की पूर्व-कल्पना कर सकता हो। इसीलिए फिल्मों में अधिकतर पटकथाकार अंग्रेजी के होते रहे है, पटकथाएँ अंग्रेजी में लिखी जाती रही है। संवादों के लिए हिंदी या उर्दू के लोग लिए जाते है जो पटकथा की मांग के अनुसार संवाद लिख सके। किंतु संवाद-लेखक ही पटकथा लिखें या जिस भाषा में फिल्म बन रही है उसी भाषा का पटकथाकार या संवादलेखक हो तो काम और आसान हो जाता है। यहाँ यह स्पष्ट करता चलूँ की संवादलेखन लेखकीय कौशल की माँग करता है।[1]

मॉग के अनुसार या कहें विषय के अनुसार, पटकथा का स्वरूप भी बदलता रहता है - दस सेकंड के स्पॉट से लेकर

---

1. पटकथा का सच, प्रभुनाथसिंह 'आजमी', पृ. 11

तीन घंटे की फिल्म तक। आधे घंटे के धारावाहिक से लेकर डॉक्यूमेंट्री तक - पटकथा के विभिन्न स्वरूप बनते है। इस प्रक्रिया में मोटे तौर पर पटकथा का क्रम चौथा होता है। मूल विचार या कंसेप्ट, कथावस्तु, सांकेतिक पटकथा, पटकथा, पटकथा संवाद, शूटिंग पटकथा, पटकथा के विस्तार है। पटकथा में संवाद आते है। वह वाचाल हो जाती है और उसके फाइनल होने के बाद फिल्म की वास्तविक अवधि का लगभग पूर्व निर्धारण हो जाता है। शूटिंग पटकथा या स्क्रिप्ट शूटिंग (श्येड्यूल) कार्यक्रम तय करने में मदत करती है। लोकेशन, फिर समय और काल के निर्धारण से शूटिंग की अवधि व्यवस्थित होती है जो कलाकारों से डेट लेने में लिए गए समय में कार्य समाप्त करने में मदतगार साबित होती है।

पटकथा में फिल्म-गति निहित होती है। वास्तव में सम्पादन की टेकनीक भी पटकथा में समाहित होती है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि पटकथा संपादन की टेकनीक यथा कट, फेड आउट, फेड इन इत्यादि का सुझाव दे, फिर भी इनके उल्लेख से फिल्म की वास्तविक अवधि का पूर्वाकलन करना सरल होता है। तथा सम्पादन-पूर्व दृश्यांकन भी हो जाता है। मान लीजिए संवाद एक दृश्य का फेड इन चाहता है तथा दृश्य कट के अनुसार शूट किया है तो उसे फेड इन करने में असुविधा होती है। अत: पटकथामें फिल्म के निर्वाह के अनुसार उल्लेख कर देना उचित होता है।

पटकथा कई बार की काट-छांट के बाद ही फिल्म की पूरी क्रिएटिव्ह टीम 'पटकथा' के तैयार होने में शामिल होती है, और इसमें सबकी राय ली जाती है। पर पटकथा रचनेवाले की राय का विशेष महत्त्व होता है। हाँ उसके पास हर दृश्य की आवश्यकता, उपयोगिता और फिल्म के विकास में उसके औचित्य का तर्क होना चाहिए।

चूँकि यह कोई लेखन-विधा नहीं है, अत: इसके लिखने का कोई सर्वसम्मत विधान नहीं है। फिर भी दृश्यवार हर दृश्य में होनेवाली घटनाओं के जिक्र को ही पटकथा कहा जाता है। कई बार इसे सीनिरियों भी कह देते है। अच्छी पटकथा का अर्थ है मूल कथा गतिशिल विकास, मूल विचार की रक्षा तथा भटकाव से बचाकर रचना को अपने हेतु तक पहुँचाना।

पटकथा लेखन में कथा का चयन, तकनीकी शब्दावली जैसे फेड इन, फेड आउट, उजॉल्व, सुपर इंपोजीशन, कट, टिल्ट, पैन, ट्रैक, जूम-इन, जूम आउट, क्लोज-अप, क्लोज शॉट, इंटरकट, बिग क्लोजअप, हाई - एंगल शॉट, लो एंगल शॉट, शार्प फोकस्ड, डी-फोकस, ओवर शोल्डर शॉट, कटवे, ट्रैक-ट्रॉली, फ्लैश बैक कि दिन, फ्लैश फॉरवर्ड, फ्रेम-इनफ्रेम आदि बातों का सटीक ज्ञान होना आवश्यक होता है, तभी फिल्म निर्माण की प्रक्रिया सफलता से संपन्न होती है।

6) शूटिंग : इसमें निर्देशक एक चार्ट तयार करके फिल्म की शूटिंग करता है, वह चार्ट निम्नोक्त रूप से होता है-

1. सीन नं.
2. ओडियो यानी संवाद
3. वीडियो यानी कार्यकलाप
4. लोकेशन यानी कहां फिल्माया जाएगा
5. किरदार का नाम, जो पटकथा में है
6. कलाकार का नाम, जो इस किरदार को निभाएगा
7. कास्ट्यूम/ प्रोपर्टी
8. मेकअप/ गेटअप
9. आऊटडोअर/इनडोअर
10. डेलाइट/नाईट सीक्वेन्स आदि।

इसमें फिल्म निर्देशक पटकथा एवं अन्य घटकों का गृहकार्य (Homework) करके शूटिंग स्थल पर जमा हो जाते है। सभी मुख्य कलाकारों, छायाकारों, कला निर्देशकों, एवं सेट को खडा करनेवाले सहायकों को पटकथा में निहित कल्पना को साकार करने की दिशा में निर्देश देकर निर्देशक टेक की शुरूवात करता है। इस प्रक्रिया को निम्नोक्त तरीके से समझा जा सकता है -

1. सबसे पहले सहायक निर्देशक सायलेन्स कहकर सबको शांत तथा आकर्षित करता है। इसका अर्थ होता है कि यूनिट 'टेक' के लिए तैयार है। यदि शूटिंग स्टूडियों में है तो बाहर प्रवेश द्वार की लाल बत्ती जला दी जाती है। इसी साथ बेल भी बजाई जाती है ताकि लोग दूर तक इसे सून ले।

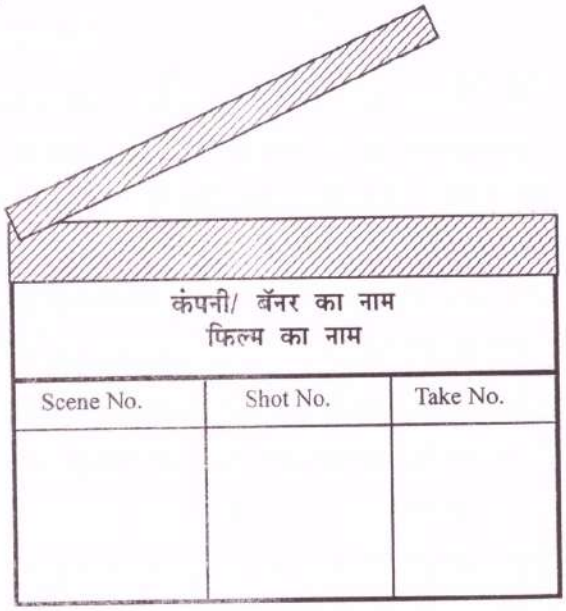
2. निर्देशक तैयार (Ready) का संकेत देता है।

3. सहायक निर्देशक स्टार्ट साऊंड कहकर ध्वनिमुद्रक को रिकॉर्डिंग आरम्भ करने का आदेश देता है।

4. रिकॉर्डिस्ट बाद में कैमरामैन को कैमरा शुरू करने का संकेत करता है।

5. कैमरा ऑन होने के बाद कैमरा सहायक टेकोमीटर (Techometer) में कैमरा स्पीड देखता है। बाद में क्लेपर बॉय को क्लेप देने का आदेश देता है।

6. क्लेपर बॉय स्लेटपर लिखे हुए सीन नं. शॉट नं. की घोषणा करके क्लेप बन्द कर देता है। क्लेप बन्द करने की आवाज रेकॉर्ड हो जाती है तथा कैमरे में उसके विवरण, एडिटिंग करने समय ये आवाज शॉट में दिखाई देती हुई क्लेप बन्द करने की छबि से मिलाकर ध्वनि तथा छवि का समन्वय (Sound and picture syachronisation) किया जाता है। अत: इस कार्य में क्लेप की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।



7. हर चीज को पूरी तरह ठीक से जाँच-परख करके जब सब कुछ स्थिर (settle) हो जाता है तब निर्देशक Action बोलकर शॉर्ट शुरू होने का आदेश देता है। जिसके बाद अभिनेता अपने संवाद तथा अभिनय करने लगते है।

एक्ट्रीम लॉग शॉट, लॉग शॉट, मिडलॉग शॉट, मिडशॉट, क्लोजअप, मिडियम क्लोज शॉट, एक्ट्रीम क्लोज अप, कट अवे शॉट आदि शॉट प्रकार में फिल्मांकन की प्रक्रिया चलती रहती है।

फिल्म बनने के बाद उसे केन्द्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड (Central Board of Film Certification) के (Censor Certificate)

मान्यता के लिए भेजा जाता है। इस बोर्ड के अपने कुछ मानक है जिनका उल्लंघन करने पर फिल्म प्रदर्शन करना कठिन हो जाता है जैसे -

1) भारत की एकता एवं स्वाधीनता की रक्षा

2) राज्यों की सुरक्षा

3) पड़ोसी राज्यों/ देशों के मैत्रीपूर्ण संबंध

4) सामाजिक व्यवस्था एवं कानून

5) नैतिकता

6) मानहानि

7) अदालत की अवमानता

8) किसी भी जूर्म को उकसाना।

बोर्ड इन तत्त्वों को परखकर चार श्रेणियों मे प्रमाणपत्र देता है -

1) **U** - सार्वजनिक या अनिर्बंधित प्रदर्शन के लिए

2) **A** - वयस्को के लिए यानी 18 वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्तियों के लिए

3) **UA** - अनिर्बंधित प्रदर्शन परंतु 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को अभिभावकों के मार्गदर्शन के साथ

4) **S** - किसी विशेष समूह के लिए

फिल्मांकन की प्रक्रिया में गीत / संगीत : सवाक् फिल्मों के आगमन से संगीत का फिल्मों में समावेश अवश्यंभावी हो गया। आरम्भ में फिल्म के कथानक अर्थात कहानी से लोग बोर नहीं हो जाए इसलिए बीच-बीच में गीत-संगीत का प्रयोग होता था। ज्यादातर इनमें छंदो का ही प्रयोग होता था। धीरे - धीरे संगीत ने अपना स्थान बनाना शुरू किया। गीत तो जरूरी थे ही, अत: अब उनके लिए 'सिच्युएशन' ढूंढी जाने लगी। कोई ऐसा जलसा या उत्सव कहानी में डाला जाता था जहाँ गीत गाया जा सके। वैसे फिल्मों में प्रयुक्त होनेवाले गीत और उनके संगीत की निर्माण-प्रक्रिया भी किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं है। गीतकार, संगीतकार, अरेन्जर, गायक-गायिका, विभिन्न वाद्य-वादक, रिकॉर्डिस्ट आदि तो इसमें प्रत्यक्ष भूमिका निभाते ही है, इस सबके अलावा गीत की रचना प्रक्रिया में फिल्म के निर्देशक का महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। निर्देशक क्योंकि सर्वेसर्वा होता है, अत: यह उसी पर निर्भर करता है कि फिल्म के अंदर कब और कहां वह गीत-संगीत का प्रयोग करे।

फिल्मों में संगीत का दुहरा उपयोग मान्य रहा है, एक तो जगह-बेजगह गाने भरने के लिए और दूसरा कथानक के मूड को उभारने के लिए पृष्ठभूमि-संगीत के रूप में। पृष्ठभूमि-संगीत अर्थात बॅकग्राऊंड म्यूझिक का प्रयोग होना तब शुरू हुआ जब किसी भाव या मूड को दर्शकों के दिमाग में अनायास ही धीरे-धीरे उत्पन्न करने की जरूरत महसूस हुई। इस तरह धीरे-धीरे पृष्ठभूमि संगीत में आर्केस्ट्रा तथा गीतों की रचना फिल्मों के लिए आवश्यक बन गयी। गीत की संगीत रचना में संगीतकार का विशेष दायित्व है। इसके लिए उसे बुद्धिमान और प्रतिभाशाली होना चाहिए। साहित्य से लेकर लोकधुनों और लोकहृदय की उसे गहरी पहचान होनी चाहिए। वैसे फिल्मी संगीत अपने आपमें स्वतंत्रकला नहीं है। कथानक या कहानी, संवाद, अभिनय, निर्देशन, फिल्मांकन आदि के समान संगीत भी फिल्म का एक हिस्सा है। वह स्वयं अंगी नही अंग है। संगीत फिल्म के और हिस्सों से प्रभावित होता है और दूसरे हिस्सों को भी प्रभावित करता है।[1] किसी फिल्म के लिए अनुबंधित हो जाने के बाद संगीतकार अनुबंध की शर्तों से कानूनी तौर पर प्रतिबद्ध होता है और फिल्म की जरूरतों और अन्यान्य बातों से भौतिक तौर

पर उसे प्रतिबद्ध होना पड़ता है।

फिल्में गीतों के मोटे तौर पर दो हिस्से होते है। एक गीत, और दूसरा संगीत। सवाल उठता है कि गीत की रचना पहले होती है या धून पहले बनती है। कुछ लोग गीत पहले लिखे जाने के हिमायती होते है तो कुछ धुन पर गीत लिखवाने के। किंतु ज्यादातर संगीत-निर्देशक गीत और धुन को परस्पर साहचर्य में विकसित होने देने के पक्षधर है। गीत की संगीत रचना या कहा जाए की संपूर्ण गीत, फिल्म में तभी सफल माना जाता है जब वह कहानी को उठाता हो न कि कहानी के प्रभाव में बाधा पहुँचाता हो। निष्कर्ष यह कि किसी भी फिल्मी गीत की तर्ज बनाते समय संगीतकार को उस गाने की सिचुएशन और मूड का ख्याल रखना पड़ता है। गीतकार और संगीतकार का आपसी समझौता आवश्यक है। उनकी बैठकें होना आवश्यक है। दोनों निर्देशक के साथ आपस में सिचुएशन तथा मूड के लिए चर्चा करते है। निर्देशक सारी बाते संगीतकार को समझाता है। इसके अलावा गीतों का किस तरह फिल्मांकन किया जाएगा, यह भी बताता है। इसके अलावा संगीतकार को गायक अथवा गायिका के बारें में भी तर्ज बनाते समय ध्यान रखना पडता है कि कौन-सा गीत किसकी आवाज में रिकार्ड किया जाएगा।

तकनीकी शब्दों का विवरण : स्थूल रूप में फिल्मांकन की प्रक्रिया को इस क्रम में रखा जा सकता है - लेखक, पटकथाकार, संवादलेखन, छायाकार, कला निर्देशक, अभिनय, गीत-संगीत, संपादन, ध्वनि-मुद्रण, वेषभूषा, व्यवसाय, वितरण, प्रदर्शन आदि।

फिल्मांकन से संबंधित तकनीकी शब्दों की व्याख्या:

अंक (Act) : रंगमंच की तरह सम्पूर्ण फिल्म की कथा को भी कई अंको में विभाजित किया जा सकता है। यद्यपि यह कतई आवश्यक नहीं। सामान्यत: विराम या मध्यान्तर के अनुसार अंकों का विभाजन किया जाता है और हर अंक आरम्भ, मध्य, तथा अन्त के अनुसार उत्कृष्ट एवं रूचिकर होना चाहिये। सम्पूर्ण पटकथा में एक अंक कई दृश्यों की एक शृंखला होता है।

क्रिया (Action) : चित्रपट या रंगमंच पर हो रही सभी गतिविधियाएँ, जैसे कलाकारों द्वारा की जानेवाली क्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ, कार्य, पार्श्वभूमि में होनेवाली गतिविधियाँ तथा दृश्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए विशेष प्रभाव व संवाद, कैमरा मूवमेंट आदि एक्शंस या गतिविधियाँ कहलाते हैं। चलचित्र में कोई भी एक्शन स्थिर नहीं होना चाहिये।

कोण (Angle) : शॉट में विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कैमरे की विभिन्न कोणीय स्थिति दर्शकों को शॉट देखने का विशेष कोण प्रदान करती है। दर्शक उसी कोण से शॉट को देखते हैं जिस कोण में कैमरा होता है। ये Top Angle, Wide Angle, Low Angle तथा Normal Angle होते है।

चरित्र (Character) : कहानी को आगे बढाने के लिए विभिन्न पात्र हाते हैं और हर एक पात्र का अपना विशेष चरित्र तथा भूमिका होती है। अत: इन्हें चरित्र भी कहा जाता है। कहानी के अनुसार कुछ चरित्र मुख्य होते हैं तथा कुछ सहयोगी परन्तु सभी अपनी भूमिका में महत्वपूर्ण होते हैं।

चरित्र चित्रण (Characterisation) : प्रत्येक चरित्र की कहानी में एक विशिष्ट भूमिका होती है, जिसे वह आरम्भ से अन्त तक प्रभावपूर्ण रूप से निभाता है। उस विशेष भूमिका के लिए चरित्र गुणों को विकसित करके उसे अन्य चरित्रों के साथ समन्वित किया जाता है। चरित्र का यही विकास चरित्र चित्रण है।

रूपरेखा (Concept) : पटकथा लेखन के पूर्वकहानी का एक धुँधला-सा स्वरूप, आधार या विचार रूपरेखा होती है। इस समय कहानी/पटकथा के अन्तिम स्वरूप का ज्ञान किसी को भी नहीं होता और न ही किसी विशेष प्रकार के चरित्र या उनके विकास

---

1 संगीत का सौन्दर्य बोध, फिल्म संगीत के संदर्भ में, पृ. 102

का निश्चित पैमाना होता है।

विषयवस्तु (Content) : किसी भी कहानी/पटकथा, शॉट या दृश्य में एक विशेष मुद्दा/कथ्य होता है जिसे निर्देशक दर्शकों तक पहुँचाना चाहता है।

जटिलताएँ (Complications) : आरम्भ से अन्त तक कहानी में रुचि बनाए रखने के लिए विभिन्न स्थितियों में, विभिन्न चरित्रों के बीच जटिलतम परिस्थितियाँ तथा समस्याओं को उत्पन्न किया जाता है उनका समाधान करते हुए कहानी को आगे बढाया जाता है।

संवाद (Communication) : विभिन्न स्तरों में, विभिन्न व्यक्तियों में, फिल्म/ रंगमंच तथा दर्शकों के बीच अपनी बात को स्पष्ट रूप से कहना, पहुँचाना संवाद कहलाता है, ताकि वह बात उसी रूप में समझी जाए जिस रूप/आशय से कही गई है अन्यथा संवाद तथा व्यर्थ माना जाता है।

सज्जा (Composition) : फिल्म विधा में हर वस्तु, चरित्र, प्रकाश-व्यवस्था साज-सज्जा आदि किसी भी दिखाई देनेवाली चीज को सुन्दरतम रूप में आकर्षक तथा सन्तुलित दिखाने को कम्पोजीशन कहते हैं।

तारतम्य (Continuity) : एक दृश्य से दूसरे दृश्य, एक शॉट से दूसरे शॉट, एक संवाद से दूसरे संवाद तथा एक क्रिया (Action) से दूसरे एक्शन के बीच तारतम्य होना चाहिए, ताकि ये टूटे हुए या अलग-अलग न लगें। ये तारतम्य समय के अतिरिक्त हर उस चीज में होना चाहिए, जो शॉट या दृश्य में उपयोग में लाई गई है।

क्रेन के उपर/नीचे (Crane Up/Down) : शूटींग के समय किसी शॉट के लिए कैमरा क्रेन में रखकर ऊपर या नीचे लाया जाता है। टॉप एंगल शॉट के लिए क्रेन के ऊपर तथा लो ऐंगल के लिए क्रेन नीचे लाई जाती है।

कट अवे शॉट (Cut away Shot) : दो शॉट या दृश्य के बीच में समयान्तर, समय प्रबन्धन या वातावरण से सम्बन्धित शॉट 'कट अवे शॉट' कहलाते हैं। ये शॉट मुख्य दृश्य से अतिरिक्त लिए जाते हैं।

चरम सीमा (Climax) : कहानी/फिल्म का अन्तिम चरण, जिसमें आरम्भ में उठाई गई समस्या अनेक उतार-चढावों से गुजरते हुए अन्त में इस स्थिति तक पहुँचती है, जिसमें इस पार या उस पार निर्णय आवश्यक होता है, इस स्थिति को चरम सीमा कहते हैं।

डोप सीट (Dope Sheet) : शूटिंग के समय या पुनर्ध्वनि अथवा ध्वनी अंकन के समय के लिए लिखी गई विस्तृत सूची जिसमें शॉट्स, ध्वनी तथा अन्य आवश्यक जानकारी दी जाती है, जो फिल्म सम्पादक तथा रिकॉर्डिस्ट को उनके कार्य में सहायता देती है।

निकालना (Deletion) : किसी शॉट/दृश्य को फिल्म से बाहर कर देना। ऐसा अनावश्यक विस्तार अथवा चित्रपट समय (Screen Time) को प्रबन्धित करने के लिए किया जाता है।

डिज़ोल्व (Dissolve) : समयान्तर (Time Lapse) दिखाने के लिए एक शॉ धीरे-धीरे गुम होता है, उसी समय आगे आनेवाला शॉट धीरे-धीरे पर्दे पर आने लगता है।

डबिंग (Dubbing) : शूटिंग के समय रिकॉर्ड किए हुए संवाद अनावश्यक शोर या ध्वनी-बाधाओं के कारण प्रयोग नहीं किए जा सकते। यही संवाद बाद में दृश्य देखकर कलाकार द्वारा होंठों की गति के अनुसार मिलान कर पुन: रिकॉर्ड किए जाते हैं। इस समय कलाकार अभिनय द्वारा नहीं, बल्कि अपनी आवाज द्वारा उचित प्रभाव प्रदान करता है।

सम्पादन (Editing) : पटकथा के अनुरूप समय, कारण तथा कार्य को ध्यान में रखते हुए दृश्यों एवं शॉट्स का संयोजन

सम्पादन कहलाता है। इस प्रक्रिया में तारतम्य (Continuity) का विशेष ध्यान रखा जाता है।

घटनाएँ (Events) : शॉट्स/दृश्य में होनेवाली घटनाएँ जो कहानी, दृश्य या किसी चरित्र को एक विशेष पहचान देती हैं और कहानी के मनोरंजन विकास में सहयोग देती है।

फेड इन/फेड आउट (Fade in/ Fade out): दृश्य समाप्ति एवं नए दृश्य के आरम्भ की सूचना। इसमें एक शॉट धीरे-धीरे पर्दे पर अँधेरे करके बाहर चला जाता है तथा अगला शॉट इस अँधेरे से बाहर निकलता है। डिजोल्व की तरह ये दोनों प्रक्रियाएँ समानान्तर नहीं है, बल्कि एक शॉट जाने के बाद दूसरा आता है। फेड समयान्तर के लिए भी प्रयोग किए जाते हैं।

फ्लैश बैक/फ्लैश फॉरवर्ड (Flash Back/Flash Forward) : अतीत के बारे में सोचना 'फ्लैश बैक' तथा भविष्य की कल्पना करना 'फ्लैश फॉरवर्ड' होता है। ये किसी चरित्र की विशेष मन:स्थिति दिखाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

चरम संकट (Final Crisis) : सम्पूर्ण पटकथा की रचना में एक के बाद एक नई समस्या उठती है उसका समाधान होता है। इस प्रकार अन्त में सबसे गम्भीर स्थिति पैदा होती है जिसका समाधान आवश्यक होता है। इसे अन्तिम समस्या/समाधान कहते हैं।

फ्रेम (Frame) : फिल्म की पट्टी में प्रयुक्त अनेक स्थिर चित्रों में से एक चित्र को फ्रेम कहते हैं। किसी सीन या शॉट के लिए हमें फ्रेम को कम्पोज करना होता है। शॉट में होनेवाली विभिन्न गतिविधियाँ फ्रेम्स की एक शृंखला में कैद हो जाती हैं।

आभास (Illusion) : फिल्म के पर्दे पर होनेवाली हर घटना वास्तविकता नहीं होती, बल्कि वास्तविकता का आभास होती है जिसे वास्तविक समझकर दर्शक स्वयं को घटना का एक भाग समझने लगते हैं।

इंटर कटिंग (Inter Cutting) : एक दृश्य में अलग-अलग स्थान पर होनेवाली विभिन्न घटनाओं को बारी-बारी से कट करना 'इंटर कटिंग' करना होता है।

संयोजन (Juxtapposition) : फिल्म के सम्पादन की प्रक्रिया में एक शॉट से दूसरे शॉट को कट करना/जोडना ताकि दृश्य का कथा तथा समयानुसार तारतम्य बना रहे।

आकार (Magnification) : शॉट में किसी वस्तु, चरित्र या क्षेत्र का आकार, जो कैमरे में विभिन्न प्रकार के लेंसों के प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है।

गतिविधि (Movements) : शॉट में होनेवाले हर मूवमेंट चाहे वह चरित्रों द्वारा हो या कैमरे द्वारा या फिर प्रॉपर्टीज यानी वस्तुंओं द्वारा।

मोंटाज (Montage) : कई विभिन्नार्थी शॉट्स को जोडकर एक 'मोंटाज' की रचना की जाती है जिसका अर्थ शॉट्स के अर्थों से भिन्न होता है।

अ-समक्रमिक ध्वनि (Non-Synchronous Sound) : संवादों तथा घटनाक्रम से उत्पन्न ध्वनियों के अतिरिक्त प्रयुक्त किए जानेवाले साउंड इफेक्ट्स, जो सामान्य रूप से वातावरण की रचना करने के लिए किए जाते हैं, जैसे चिड़ियों की चहक, यातायात, हवा आवाज आदि। संवाद तथा घटनाक्रम (Incidental) से उत्पन्न ध्वनि समक्रमिक ध्वनि (Synchronous Sound) कहलाती है।

पर्दे के पीछे आवाजें (Off Screen Voices) : किसी दृश्य में पर्दे से आनेवाले ध्वनि प्रभाव, पार्श्व संगीत, संवाद या विवरण आदि।

गति (Pace) : फिल्म के बहाव में आरम्भ से अन्त तक एक विशेष गति, जो कथा/कहानी के भाव अनुसार निर्धारित की जाती है।

पैनिंग (Panning) : बाएँ से दाएँ या दाएँ से बाएँ कैमरा मूवमेंट।

मार्गदर्शक ट्रेक (Pilot Track) : फिल्म की शूटिंग के समय ध्वनि मुद्रित संवादों की ध्वनि पट्टी (Dialogue Track), जो डबिंग के समय कलाकारों को पनु: संवाद बोलने के लिए मार्गदर्शक का कार्य करती है। कलाकार संवादों को उसी भाव में बोलते है, जिसमें शूटिंग के समय बोले गए थे।

कथावस्तु (Plot) : कहानी/कथावस्तु की योजना।

समानान्तर क्रिया (Parallel Action) : एक ही दृश्य में एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर हो रही क्रियाएँ/घटनाएँ।

भूमिका (Premise) : किसी कथा/कहानी का आधार।

सजावटी वस्तुएँ (Properties) : दृश्य में उपयुक्त सजावटी तथा उपयोग में आनेवाली वस्तुएँ।

समाधान (Resolution) : आरम्भ से अन्त तक कथा में उत्पन्न होनेवाली विभिन्न समस्याओं, जटिलताओं व विरोधों का समाधान।

लय (Rhythem) : संगीत की लय की तरह ही पटकथाकार हर दृश्य तथा सम्पूर्ण पटकथा में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं, भावों, तनावों तथा नाटकीयता के प्रयोग से लय कक्की उत्पत्ति करता है।

दृश्य (Scene) : किसी घटना या कथावस्ततु का दृश्य रूप।

पटकथा (Screen Play) : किसी कहानी को चित्रपट की तकनीकियों की आवश्यकता के अनुसार दृश्य तथा नाटकीय रुप।

स्क्रीन टाइम (Screen Time) : पर्दे पर किसी घटना के घटने का समय (Duration) वासविक समय से भिन्न होता है।

दृश्य श्रृंखला (Sequence) : पटकथा में प्रयुक्त दृश्यों के क्रमिक श्रृंखला। लेखक इसका निप्रय कहानी/पटकथा के कुछ विशेष गुणों के अनुसार करता है।

पर्दे की दिशा (Screen Direction) : पर्दे पर विभिन्न कलाकारों या चरित्रों के गति करने की दिशा।

सेटिंग (Setting) : किसी दृश्य का काल्पनिक घटनास्थल, जिसे दृश्य की आवश्यकतानुसार तैयार किया जाता है।

मन्द गति (Slow Motion) : कैमरे की गति (Speed) बढ़ाकर पर्दे पर होनेवाली घटना मन्द गति से होती दिखाई देती है। कैमरे की गति को कम करके इन्हीं घटनाओं (Actions) को तीव्र गति से होते हुए दिखाया जाता है। इसे तीव्र गति (Fast motion) कहते है।

ध्वनि प्रभाव (Sound Effects) : दृश्य में उपयुक्त वातावरण तथा प्रभाव प्राप्त करने के लिए विशेष ध्वनि प्रभाव()।

विशेष प्रभाव (Special Effect) : कैमरे के विभिन्न तकनिकों के द्वारा विशेष दृश्य प्रभाव (Visual Effect) की रचना, जेसे - डिजोल्व (Dessolve), फेड (Fade), वाइप (Wipe) आदि।

अध्यारोपण (Superimposition) : एक दृश्य के उपर अन्य दृश्य का अध्यारोपण।

कार्य योजना (Strategy) : पटकथा में एक चरित्र के विकास एवं परिवर्तन की योजना। इसके अनुसार उसका विभिन्न चरित्रों के साथ सम्बन्ध जोड़ना।

टिल्ट (Tilt up/Tilt Down) : कैमरे के ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर की ओर गति।

पदार्पण (Transition) : एक दृश्य से दूसरे दृश्य अथवा एक शॉट से दूसरे शॉट में पदार्पण की क्रिया।

कल्पनाशक्ति (Vision) : रचनात्मक कल्पनाशक्ति, जो किसी भी रचना की व्यक्तिगत विशेषता होती है।

दृश्य कल्पना (Visualisation) : किसी कथा/ कहानी,नाटक या उपन्यास की दृश्य रूप में प्रस्तुति।

दृश्य क्षेत्र (Visual Area) : कैमरे द्वारा किसी शॉट में दिखाई देनेवाला क्षेत्र।

वाइप (Wipe) : शॉट्स या दृश्य में समयान्तर या पदार्पण के लिए प्रयुक्त विशेष प्रभाव, जिसमें एक दृश्य जाता है अगला दृश्य आ जाता है।

जूम (Zoom) : कैमरे में एक विशेष लेंस (Zoom lens) के प्रयोग से वस्तुओं या चरित्रों के पास या दूर होना।

+ + +

तृतीय अध्याय

हिन्दी की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन

फिल्में, साहित्य और अन्य कलाओं की अंतर्निभरता, अंतर्द्वंद्व तथा पारस्परिक संबंधों के अनेक पहलुओं को लेकर आज कई तरह से संवाद जारी है। फिल्म की उपज के कई स्तोत्र है - कभी कोई विचार, कभी घटना, कभी कोई व्यक्ति तो कभी कोई प्रसंग । उसी तरह साहित्य भी फिल्म निर्माण के मूल में होता है। आज की तारीख में हिंदी साहित्य पर काफी फिल्में बनी है जिनकी चर्चा हम यहाँ पर करेंगे । **यहाँ पर यह बात याद रखना आवश्यक है कि हिंदी के लेखकों द्वारा फिल्मों के लिए काम करना एक बात है, और उनकी साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाना दूसरी बात। हिंदी फिल्मों के लिए हिंदी के अनेक लेखकों ने काम किया है जैसे फिल्म के लिए कहानी लेखन, पटकथा लेखन, संवाद लेखन आदि परंतु पहले से ही प्रकाशित किसी साहित्यिक कृति पर फिल्में बहुत कम बनी है।** यहां पर विशूद्ध रूप से साहित्य कहलाने वाली कृतियों के उपर बनी फिल्मों की ही चर्चा की जाएगी साथ ही फिल्मों के लिए काम करनेवाले लेखकों की भी। क्योंकि फिल्मी दुनिया ने हिंदी लेखकों को ज्यादातर संवाद लेखन के लिए ही उपयोग में लाया है, या फिर खास फिल्मों के लिए कहानी या पटकथा लिखने के लिए और ऐसी कहानी और पटकथा का साहित्य नामक रचनात्मकता से दूर दूर तक कोई संबंध नहीं होता। वे असल में हिंदी साहित्य के लेखक नहीं सिनेलेखक होते है। सबसे पहले विवरणात्मक रूप में उन सभी साहित्यिक कृतियों एवं फिल्मों का ब्यौरा देखेंगे -

रचनाकार	कृति	कृति पर बनी फिल्म का नाम	निर्देशक	वर्ष
प्रेमचंद	सिने कहानी	मील/मजदूर	नानुभाई वकील	1934
	सेवासदन	सेवासदन		1938
	त्रिया चरित्र	स्वामी	अब्दुल रशीद कारदार	1946
	रंगभूमि	रंगभूमि	-	1946
	दो बैलों की कथा	हीरा मोती	कृष्ण चोपडा	1959
	गोदान	गोदान	त्रिलोक जेटली	1963
	गबन	गबन	कृष्ण चोपडा/	
	शतरंज के खिलाडी	शतरंज के खिलाडी	सत्यजित राय	1977
	कफन	ओका ओरी कथा (तेलगु)	मृणाल सेन	1977
	निर्मला	निर्मला (टी.व्ही.सिरियल)	-	1980
	सद्गति	सद्गति	सत्यजित राय	1981
	प्रेम सरोवर	प्रेम सरोवर (टी.व्ही.सिरियल)	सुनील बत्ता	1984
	कहानियों पर	गुलदस्ता (टी.व्ही.सिरियल)	सुनील बत्ता	2006
	कहानियों पर	तहरीर (टी.व्ही.सिरियल)	गुलजार	2006

कमलेश्वर	एक सड़क सत्तावन गलियाँ (बदनाम बस्ती)	बदनाम गली	प्रेम कपूर	
	तलाश	फिर भी	शिवेन्द्र सिन्हा	
	डाक बंगला	डाक बंगला	गिरीश रंजन	
	काली आँधी	आँधी	गुलजार	1975
पं.सुदर्शन	भाग्यचक्र	धूपछाँव		1935
से.गोविन्ददास	धूंधाधार	धूंधाधार		1935
होमवती	गोटे की टोपी	सिंदूर		1947
आचार्य चतुरसेन	धर्मपुत्र	धर्मपुत्र		1961
			हृषिकेश मुखर्जी	1966
जैनेंद्र	त्यागपत्र	त्यागपत्र		1978
मन्नू भंडारी	यही सच है	रजनीगंधा	बासु चटर्जी	
		जीना यहां	बासु चटर्जी	
	आपका बंटी	आपका बंटी	शिशिर मिश्र	
मोहन राकेश	उसकी रोटी	उसकी रोटी	मणि कौल	
	आषाढ का एक दिन	आषाढ का एक दिन	मणि कौल	
	आधे अधूरे	आधे अधूरे	बासु भट्टाचार्य	
फणीश्वरनाथ रेणू	मारे गए गुलफाम उर्फ तीसरी कसम	तीसरी कसम	बासु भट्टाचर्य	
	मैला आँचल	डाग्डर बाबू (अपूर्ण)	नवेन्दु घोष	
चंद्रधरशर्मा गुलेरी	उसने कहा था	उसने कहा था	मोनी भट्टाचार्य	
राजेन्द्र यादव	सारा आकाश	सारा आकाश	बासु चटर्जी	
विजयदान देथा	दुविधा	दुविधा	मणि कौल	
	परिणति	परिणति	प्रकाश झा	
		पहेली	अमोल पालेकर	
रमेश बक्शी	अठारह सूरज के पौधे	27 डाऊन	अवतार कौल	
निर्मल वर्मा	मायादर्पण	मायादर्पण	कुमार साहनी	
भीष्म साहनी	तमस	तमस	गोविंद निहलानी	
संजय सहाय	पतंग	पतंग	गौतम घोष	
आलम शाह खान	किराये की कोख	कोख	आर.एस.विकल	
कुसुम अंचल	उसकी पंटवटी	पंचवटी	बासु भट्टाचार्य	
शिवमूर्ति	तिरिया चरितर	तिरिय चरित्र	बासु चटर्जी	
शैवाल	दामुल	दामुल	प्रकाश झा	
धर्मवीर भारती	सूरज का सातवां घोडा	सूरज का सातवा घोडा	श्याम बेनेगल	

राजिन्दसिंह बेदी	एक चादर मैली सी	एक चादर मैली सी	सुखवंत ढांढा	
	दस्तक	दस्तक	राजिन्दसिंह बेदी	
	गरम कोट	गरम कोट	अमर कुमार	
कृष्णचंदर	यहां से शहर देखो	यहां से शहर देखो	कृष्णचंदर	
हसन अब्बास	आनंदी	गोदी	शाम बेनेगल	
इंद्रराज आनंद	पैसा	पैसा	पृथ्वीराज कपूर	
मिर्झा हादी रूसवा	उमराव जान (उर्दू)	उमराव जान	मुजफ्फर अली	
ख्वाजा अहमद अब्बास	दिल हो तो है	अचानक	गुलजार	
भगवतीचरण वर्मा	चित्रलेखा	चित्रलेखा		
ग.मा.मुक्तिबोध शास्त्री	सतह से उठता आदमी	सतह से उठता आदमी		
विनोदकुमार शुक्ल	नोकर की कमीज	नोकर की कमीज	मणि कौल	
श्रीलाल शुक्ल	राग दरबारी (सिरियल)	रागदरबारी		
रांगेय राघव	कब तक पुकारूँ (सिरियल)	कब तक पुकारूँ		
लाला श्रीनिवासदास	परीक्षा गुरु (सिरियल)	परीक्षा गुरु		2011

हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर फिल्में, वृत्तचित्रों एवं धारावाहिकों के रूप में अब तक इतना फिल्माया जा सका है। सबसे पहले हम प्रेमचंद की कथाकृतियों से संबंधित फिल्मांकन को विस्तार से देखेंगे -

1) प्रेमचंद की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन :

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद फिल्मों में लिखने के लिए मुंबई आमंत्रित किए गए। और 'अजन्ता सिनेटोन' से सम्बद्ध हुए। जिस के लिए उन्होने छः कहानियाँ लिखी। प्रेमचंद के साहित्य से संबंधित अब तक जितना भी फिल्मांकन हो सका है उनमें सबसे पहले मिल नामक फिल्म का उल्लेख आता है।

(i) **मिल (1934)** - सन 1934 में प्रेमचंद की कहानी पर 'मिल' नामक फिल्म बनी थी। सेंसर की काटछाँट के बाद इसे 'मजदूर' नाम से प्रकाशित किया गया। यह पहली फिल्म थी जिसमें विशुद्ध यथार्थ की पर्दे पर रचना करने की कोशिश की गई थी। दुर्भाग्य से आज इस फिल्म का कोई भी प्रिन्ट उपलब्ध नहीं है, नहीं तो इसे देखकर हम कह सकते थे कि प्रेमचंद स्वयं अभिनय भी कर सकते थे। अपनी इस फिल्म में उन्होंने एक छोटी-सी भूमिका भी निभाई थी।[1]

'मिल' फिल्म की कहानी मुंबई टैक्सटाइल मिल के लोकेशन शॉट से शुरू होती है। मिल मालिक की मृत्यू के बाद मिल उसके बेटे-बेटी मिलकर चलाते है। मिल मालिक की बेटी पद्मा (बिम्बो) अच्छे स्वभाव की है किन्तु बेटा विनोद (नयामपल्ली) शराबी और बिगडैल है। विनोद मजदूरों पर अत्याचार बढाता जाता है। मिल मजदूर विरोध करके मिल बंद करवा देते है। मिल मजदूरों के नेता कैलास (जयराज) का साथ पदमा देती है। विनोद खून-खराबे पर उतारू होता है और पुलिस की हिरासत में

---

1. हिंदी सिनेमा नीति और अनीति, डॉ वीरेन्द्र सक्सेना, पृ. 14

जेल का कैदी बन जाता है। मजदूरों के सहयोग से पदमा मिल को फिर से शुरू करती है। उसका व्यवहार मानववादी है। वह कैलास से शादी कर लेती है। गरीबी और अमीरी, मजदूर और मलिक के बीच की खाई को शुद्ध यथार्थवादी दृष्टि से पाटने की राह सुझानेवाली मजदूर मालिकों की आँखो में चुभने लगी। मेसर बोर्ड के सदस्यों में एक मिल मालिक भी थे। उन्होंने फिल्म पर अवरोध लगाने की कोशिश की। फिल्मपर लाहौर और दिल्ली में बैन लगाए गए। केन्द्रीय अंग्रेजी सरकार ने मजदूरों को भडकाने की कोशिश का अभियोग लगाकर फिल्म पर बैन घोषित कर दिया। यह फिल्म आर्थिक दृष्टि से असफल रही। इस फिल्म के विवाद के कारण इसे - मिल, गरीब मजदूर, मजदूर, गिरणी, सेठ की बेटी, मिल मजदूर आदि कई नामों से प्रदर्शित करने की कोशिश की गई।

(ii) **नवजीवन (1934)** - प्रेमचंद की किसी कहानी पर बननेवाली दूसरी फिल्म थी अजन्ता सिनेटोन द्वारा 1934 में ही निर्मित 'नवजीवन'। इस फिल्म में आदर्शवादी प्रेम दिखाया गया था। इसमें प्रेमचंद की मूल कहानी नाम मात्र को ही रह गई थी। इसी का दूसरा नाम 'शेर दिल औरत' भी था। यह फिल्म भी असफल हो गई।

(iii) **सेवासदन (1934)** - प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' पर बनी यह फिल्म थी जिसका दूसरा नाम बाजार-ए- हुस्न भी था। **हिंदी की किसी साहित्यिक कृति पर बनी यह पहली फिल्म थी।** इसे महालक्ष्मी सिनेटोन ने बनाया था। इसके निर्देशक थे उस समय के सबसे बड़े निर्देशकों में से एक नानुभाई वकील। इस फिल्म के प्रीमियर के अवसर पर भावविव्हल होकर प्रेमचंद ने कहा था, यदि मेरे इस उपन्यास द्वारा समाज का कुछ भी उपकार हो सका तो मैं अपने आपको कृतार्थ मानूंगा।[1] किंतु यह दुख का विषय है कि जो दारूण परिणति प्रेमचंद की अन्य साहित्यिक कृतियों की हुई वही सेवासदन की भी। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि इस फिल्म में भी प्रेमचंद की मूल कृति के साथ इतनी छूट ली गई, उसमें इतने परिवर्तन किए गए कि खुद प्रेमचंद भी इस फिल्म को देखकर सोच में पड़ गए कि इसके लेखक वे खुद है या कोई और। वस्तुत: इस फिल्म में मूल समस्या वेश्यावृत्ति को छोड़कर नाच-गाने की भरमार हो गई थी।

सन 1938 में सेवासदन पर एक बार फिल्म का निर्माण किया गया किंतु इस बार यह फिल्म बनी तमिल में। इसे बनाया था चंद्रप्रभा सिनेटोन ने और निर्देशक थे कृष्णस्वामी सुब्रह्मण्यम। जहाँ सेवासदन पर आधारित हिंदी फिल्म में मूल कृति को बहुत परिवर्तित कर दिया था। वहाँ तमिल में सेवासदन को बहुत निष्ठा के साथ बनाया गया। हालाँकि के. सुब्रह्मण्यम् ने इस फिल्म को एक संगीत प्रधान फिल्म के रूप में ही बनाया था किंतु फिर भी मूल कृति के सुधारणावादी स्वर को अक्षुण्ण रखा था। यह फिल्म आलोचनात्मक और व्यावसायिक दोनो दृष्टियों से सफल हो रही थी।

(iv) **स्वामी (1946)** - प्रेमचंद के मृत्यु उपरांत उनके द्वारा लिखी उर्दू कहानी 'औरत की फितरत' जिसे बाद में हिंदी में 'प्रियाचरित्र' नाम से लिखा गया था, पर स्वामी नामक फिल्म बनाई गई। स्वामी का निर्देशन अब्दुल रशीद कारदार ने किया था। प्रेमचंद की मूल कहानी को फिल्म बनाते समय काफी तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया।

(v) **रंगभूमि (1946)** - प्रेमचंद के देहावसान के ठीक दस वर्ष पश्चात् अर्थात 1946 में भवनानी प्रोडक्शन, मुंबई ने प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' पर इसी नाम की फिल्म बनाई। यह फिल्म काफी बड़े स्तर पर बनाई गई और तब तक प्रेमचंद के साहित्य पर बनी फिल्मों से कहीं उत्तम थी। प्रेमचंद के उपन्यास में उठाई गई औद्योगिकरण की समस्या और पूंजीपतियों और मजदूरों के संघर्ष को इस फिल्म में भी प्रभावशाली ढंग से दर्शाया गया था। इतना सब होने के बावजूद व्यावसायिक दृष्ट्या यह फिल्म औसत ही रही।

(vi) **हीरा मोती (1959)** -एक लंबे अंतराल के पश्चात मुंशी प्रेमचंद की लोकप्रिय कहानी 'दो बैलों की कथा' पर एक सफल फिल्म का निर्माण किया गया जिसका नाम था हीरा-मोती। इसके निर्देशन थे कृष्ण चोपड़ा। प्रेमचंद के कथा साहित्य पर बननेवाली

---

1. हिंदी साहित्य और सिनेमा, विवेक दुबे, पृ. 45

सभी फिल्मों में शायद यह सर्वोत्तम है। इस फिल्म में बलराज साहनी और निरूपमा राय जैसे उस वक्त के चोटी के कलाकार थे। निर्देशक कृष्ण चोपड़ा ने बैलों को माध्यम बनाकर किसान की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। यह पीड़ा प्रेमचंद की अन्य कहानियों में और प्रखरता से देखी जा सकती है। कहानी की अपेक्षा फिल्म में असमानता व शोषण के खिलाफ अधिक स्वर है लेकिन उसके मूल कथ्य में भिन्नता आ गई है। फिर भी निर्देशक ने प्रेमचंद की एक लघु कहानी को माध्यम बनाकर तत्कालीन ग्रामीण पीड़ा को फिल्म के माध्यम से सामने लाने का एक सुंदर प्रयास किया है। हीरा मोती को निसंदेह दो बैलों की कथा का सफल फिल्मांकन कहा जाएगा।

(vii) **गोदान (1963)** - हीरामोती के पश्चात प्रेमचंद के कथा साहित्य पर बननेवाली अगली फिल्म थी गोदान जो प्रेमचंद के इसी नाम के सुप्रसिद्ध उपन्यास पर आधारित थी। यह सर्व विदित है कि 'गोदान' प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। एक ऐसा उपन्यास जो लोकप्रियता एवं आलोचनात्मक प्रशंसा दोनों कसौटियों पर इतना खरा सिद्ध हो चुका हो उस पर फिल्म बनाना कितना चुनौतीपूर्ण कार्य है यह कहने की आवश्यकता नहीं। परंतु दुर्भाग्य से 'गोदान' का फिल्मांकन सफल सिद्ध नहीं हुआ। इस फिल्म में प्रसिद्ध कलाकार राजकुमार और कामिनी कौशल ने क्रमशः होरी और धनिया की भूमिका की थी। निर्देशक त्रिलोक जेटली ने स्वयं इसमें मेहता की भूमिका की थी। एक साहित्यिक कृति के रूप में गोदान जितनी कालजयी रचना बन पाई उसके मुकाबले फिल्म बहुत ही साधारण रही।

(viii) **गबन (1966)** - गोदान की असफलता को गबन ने सँवारा। प्रेमचंद के 'गबन' नामक उपन्यास पर इसी नाम से 'हीरा-मोती' के निर्देशक कृष्ण चोपड़ा ने एक अच्छी फिल्म बनाई। कृष्ण चोपड़ा के आकस्मिक निधन के कारण फिल्म को हृषिकेश मुखर्जी ने पूरा किया। इस फिल्म में उस वक्त के चोटी के कलाकारों ने भूमिका निभाई थी। सुनील दत्त, साधना, कन्हैयालाल, लीला मिश्रा, अनवर हुसैन, आगा आदि कलाकारों ने इसमें अच्छी अदाकारी की थी। प्रेमचंद की साहित्यिक कृतियो पर जितनी भी फिल्में बनी है उनमें व्यवसाय की दृष्टि से यह सबसे सफल फिल्म मानी जाएगी।

जहाँ तक उपन्यास का प्रश्न है तो उसमें प्रेमचंद का मुख्य उद्देश मध्यवर्गीय दिखावे की प्रवृत्ति और दिग्भ्रम और उसके भयंकर परिणामों को दिखाना है। निर्देशक ने भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं करके ज्यों का त्यों दिखाने का प्रयास किया है। हीरा-मोती' बनाने वाले कृष्ण चोपडा इस फिल्म की सफलता देखने के लिए जीवित नहीं रह सके यह दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। सफल कृति पर सफल फिल्म का बनना ऐसे संयोग बहुत कम होते है, उनमें से यह एक है।

(ix) **सद्‌गति (1981)** - मूल रूप से टीव्ही के लिए बनाई गई यह पहली रंगीत फिल्म थी। उच्च कोटि के निर्देशक एवं उच्च कोटि की रचना के संयोग से कितनी अभुतपूर्व कलाकृति बन सकती है, इसका श्रेष्ठ उदाहरण प्रेमचंद की 'सद्‌गति' कहानी पर बनी फिल्म 'सद्‌गति' कहानी 1931 में लिखी गई थी ठीक पचास साल बाद इसका फिल्मांकन हुआ । अर्थात पचास वर्ष बाद भी कहानी प्रासंगिक थी और उसपर बनी टेलीफिल्म भी। इस फिल्म में भी बहुत मंझे हुए कलाकार थे। दुखी के रूप में ओमपुरी, झुरिया के रूप में स्मिता पाटील और पं. घासीराम के रूप में मोहन आगाशे थे। ये तीनों कलाकार रंगमंच से जुडे श्रेष्ठ कलाकार थे। एक कलात्मक टेलीफिल्म के रूप में सत्यजित राय ने इसे बहुत ही मेहनत से सँवारा था। नग्न सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से कहानी एवं टेलीफिल्म दोनों काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो गए ।

उच्च वर्ग द्वारा निम्नवर्ग का शोषण, अस्पृश्यता, छुआछूत की भावना आदि बातें इस टेलीफिल्म में कहानी की तरह ही ज्यों के त्यों रखी हुई है। 'सद्‌गति' फिल्म के परिवेश और वातावरण में संवाद से लेकर कैमरा तक सब स्वाभाविक रूप से गतिवान नजर आते है, मूल कहानी को सत्यजित राय ने काफी इमानदारी से फिल्माया है।

(x) **शतरंज के खिलाडी (1977)** - 'शतरंज के खिलाडी' यह कहानी मूल रूप से उर्दू में थी, जिसका अनुवाद स्वयं प्रेमचंद ने हिंदी में किया था। इसके अंग्रजी संस्करण को पढ़कर सत्यजित राय ने इस पर फिल्म बनाने की ठानी। वस्तुतः हिंदी साहित्य

को विश्व में यदि प्रेमचंद के माध्यम से जाना गया तो भारतीय सिनेमा को सत्यजित राय के नाम से। जब कभी भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फिल्मों और फिल्म निर्देशको पर बात चलती है तो सत्यजीत राय का नाम अवश्य लिया जाता है। राय की फिल्मो में यथार्थ अनुभव और अनुभूतियो का कलात्मक प्रस्तुतीकरण हुआ है।

सत्यजीत राय ने अपनी रचनाशीलता के माध्यम से मूल कहानी को फिल्म में नया रूप दिया है और यह रूप मूल कहानी से कहीं कटा नहीं है। अपितु उसका पूरक होते हुए उसके साथ-साथ चला है। स्थान-स्थान पर कल्पना से रचे गए प्रसंग फिल्म को एक गहरी सार्थकता प्रदान करते है। इस फिल्म में काफी दिग्गज कलाकार थे-संजीवकुमार, सईद जाफरी, अमजद खान, शबाना आजमी, फरीदा जलाल, रिचर्ड ऐटेन बरो, फारूख शेख, टॉम अल्टर आदि। फिल्म में अमिताभ बच्चन ने अपनी आवाज दी थी। सत्यजीत राय ने प्रेमचंद की कहानी को फिल्म के माध्यम से ऐतिहासिक बना दिया है। भारत में ही नहीं बल्कि शतरंज के खिलाडी का प्रदर्शन बर्लिन, लंदन, सीटेल, शिकागो, लॉस अँजीलिस, मियामी तथा टोरांटो के आंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में हो चुका है।

सत्यजीत राय एक विश्वमान्य फिल्मकार है इसमें कोई दो राय नहीं। बंगला साहित्य की पृष्ठभूमि पर वे कई फिल्में बना चुके हे। वहाँ पर वे अधिकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार की कृतियों पर बनी फिल्मों के कारण प्रसिद्ध हो चुके थे। वही फॉर्म्यूला वे हिंदी में अपनाने के लिए आए थे। हिंदी के श्रेष्ठ कथाकार की से कठात्रियों को चुनकर वे करिश्मा करना चाहते थे, परंतु सफलता हाथ न लगी। सद्गति एक कलात्मक फिल्म बनकर रह गई, शतरंज के खिलाडी भी अपना कुछ खास प्रभाव नहीं छोड पाई। दो बडे नाम प्रेमचंद और सत्यजीत राय के उपर ही इन फिल्मों की चर्चा होती रही।

(xi) **ओका ओरी कथा (1977)** - प्रेमचंद की अजरामर कहानी 'कफन' को लेकर हिंदी में तो कोई फिल्मांकन नहीं हुआ परंतु तेलगु में इसे ओका ओरी कथा नाम से फिल्माया गया। मृणाल सेन के निर्देशन में यह फिल्म बनी थी। आंध्र प्रदेश में इस फिल्म को काफी सराहा गया और उसे काफी पुरस्कार मिले।

(xii) **निर्मला (1980)** - प्रेमचंद के 'निर्मला' नामक उपन्यास पर एक टी.व्ही. सिरियल बना था।

(xiii) **प्रेम सरोवर (1984)** - लखनऊ दुरदर्शन के लिए निर्देशक सुनील बत्ता ने 'प्रेमसरोवर' नामक कलाकृति के आधारपर एक धारावाहिक बनाया था। आगे चलकर 1996 में इसी धारावाहिक को डीडी नॅशनल हिंदी बेल्ट के लिए पुनर्प्रसारित किया गया।

(xiv) **गुलदस्ता (2006)** - सुनील बत्ता ने ही प्रेमचंद की कुछ कहानियों का फिल्मांकन कर 'गुलदस्ता' नामक धारावाहिक बनाकर दूरदर्शन के लिए प्रस्तुत किया था। जिनमें विनोद, लॉटरी, स्त्री-पुरूष, नैराश्य, खुदाई फौजदार, एक आँच की कसर, माटी का हृदय, मुक्तिमार्ग, बुढी काकी, चमत्कार आदि प्रमुख कहानियाँ थी। प्रेमचंद के साहित्य को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने एवं अशिक्षित लोगों को भी इन कहानियों की जानकारी इसी परिप्रेक्ष्य में इनके महत्त्व को आँका जा सकता है। नहीं तो कलात्मकता एवं प्रस्तुतीकरण आदि दोनो क्षेत्रों में इसे औसत ही माना जा सकता है। रामायण एवं महाभारत देखने के लिए जो भीड उमडी उसके मुकाबले इन कहानियों की प्रस्तुतीकरण को बहुत कम समर्थन मिला।

(xv) **तहरीर** - मुंशी प्रेमचंद की (2006) - निर्देशक एवं गीतकार गुलजार ने प्रेमचंद की कुछ कहानियों का दूरदर्शन के लिए फिल्मांकन किया था। मुंशी प्रेमचंद की 125 वी जयंती के उपलक्ष्य में इसे बनाया गया था। दूरदर्शन पर प्रसारित इन कहानियों में ईदगाह, कफन, सवा सेर गेहूँ, पूस की रात, बूढी काकी, ठाकूर का कुआँ, नमक का दरोगा, ज्योति, हज्जे अकबर आदि प्रमुख थी। वैसे इन कहानियो के फिल्मांकन को काफी सराहा गया परंतु फिर वही बात जिन लोगों ने इन कहानियों को पढा नही होगा या पढ़ नहीं सकते उनके लिए ही यह प्रसारण आकर्षण का केन्द्र रहा।

(xiv) **गोधुली (1977)** - प्रेमचंद की कुछ रचनाओं का इसमें फिल्मांकन किया गया था, इस बारे में इससे अधिक जानकारी

नहीं मिल पाती।

(xv) **उधार की जिंदगी** - प्रेमचंद के साहित्य पर इस नाम से दूरदर्शन पर यह कार्यक्रम था।

(xvi) **मंत्र** - प्रेमचंद के साहित्य पर टेलीविजन के लिए यह कार्यक्रम बना था।

2) कमलेश्वर की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन :

प्रेमचंद के बाद हिंदी फिल्मों में सबसे अधिक चर्चित हिंदी साहित्यकार के रूप में कमलेश्वर का नाम लिया जाता है। कमलेश्वर स्वयं प्रारंभ से ही टेलीविजन इस विधा से जुड़े रहे है, इस कारण साहित्यिक कृतियों की दृश्य माध्यमों में प्रस्तुति के परिप्रेक्ष्य में अन्य के मुकाबले इन्हें ज्यादा अनुभव था। वैसे कमलेश्वर की बहुत कम कृतियों मात्र तीन पर ही फिल्में बन चुकी है। परंतु कमलेश्वर ने फिल्मों के लिए बहुत लिखा है वह फिर संवाद के क्षेत्र में हो, पटकथा के क्षेत्र में हो या फिर सिनेकथाओं को लेकर हो। इस दृष्टि से अपनी साहित्यिक प्रतिभा का सबसे ज्यादा उपयोग फिल्मों के लिए कमलेश्वर ने ही किया है। बड़े बड़े बॅनर, निर्देशक, कलाकार, गीत-संगीतकार के साथ लेकर बननेवाली फिल्मों में कमलेश्वर ने काम किया है। सारा आकाश, आंधी, मौसम, अमानुष, छोटी सी बात, राम-बलराम, साजन की सहेली, द बर्निंग ट्रेन, सौतन, रंग बिरंगी, यह देश, लैला, प्रीति, सौतन की बेटी, तलाश आदि प्रसिद्ध एवं व्यावसायिक दृष्ट्या सफल फिल्मों के आधारपर यह बखूबी जाना जा सकता है। इनमें से साहित्यिक एवं गैरसाहित्यिक फिल्मों को निम्नोक्त रूप में देख सकते है-

(i) **बदनाम गली / बस्ती** - बदनाम बस्ती कमलेश्वर के इसी नाम के उपन्यास का फिल्मांतरण है। इसका निर्माण और निर्देशन प्रेम कपूर ने किया था। यह एक यथार्थवादी उपन्यास था जिसमें एक डाकू सरनाम सिंह और बंसरी नाम की नर्तकी को केन्द्र में रखकर कहानी रची गई थी। फिल्म कलात्मकता एवं व्यावसायिकता दोनो दृष्टि से औसत ही रही।

(ii) **फिर भी** - 'तलाश' कमलेश्वर की एक मनोवैज्ञानिक कहानी थी। इस पर 'फिर भी' नाम से निर्देशक शिवेन्द्र सिन्हा ने फिल्म बनाई। वैसे यह कहानी बहुत छोटी है पर पात्रों के आपसी संवाद द्वारा लेखक ने स्थान, परिस्थितियों, घटनाओं और समय को अधिक महत्त्व दिया है। मूल कहानी माँ और बेटी के आपसी अन्तर्द्वंद्व की कहानी है। इस फिल्म की एक विशेष बात यह है कि कहानी, संवाद एवं पटकथा सभी कमलेश्वर का ही है। वैसे फिल्म में काफी कुछ नया डाला गया था। कमलेश्वर ने मूल कहानी के कथ्य को फिल्म में विभिन्न प्रसंगों के साथ जोड़कर इसे विस्तृत किया था। जिससे अच्छी फिल्म हमारे सामने आई। इसे बनाते समय निर्देशक ने बंबईया फिल्मों की व्यावसायिकता का काफी उपयोग किया है, काफी मसालेदार एवं सेक्सी दृश्य इसमें रखे गए थे, फिल्म कलात्मकता में अच्छी बनी पर बॉक्स ऑफीस पर औसत ही रही।

(iii) **डाक बंगला** - कमलेश्वर के 'डाक बंगला' नाम से लिखे उपन्यास पर इसी नाम से फिल्म बनी थी। फिल्म के निर्देशक का एवं निर्माता थे गिरीश रंजन। डाक बंगला एक ऐसी युवती का प्रतीक है, जिसके जीवन मे अनेक व्यक्ति आकर चले जाते है, और वह खाली की खाली रह जाती है। फिल्म ने एक साहसिक कथानक लिया है और आधुनिक मनुष्य की संश्लिष्ट चेतना को दृश्य बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, जो निश्चित ही एक दूष्कर कार्य है। कुल मिलाकर डाक बंगला श्रेष्ठ रूपांतरो की दिशा में एक अच्छा प्रयत्न था।

(iv) **आँधी (1975)** - सुप्रसिद्ध निर्देशक एवं गीतकार गुलजार ने कमलेश्वर के एक राजनितिक उपन्यास 'काली आंधी' पर आँधी नाम की फिल्म बनाई जो काफी विवादास्पद रही। आपातकाल एवं इंदिरा गांधी को जोड़कर इस फिल्म को देखा गया। अपेक्षाकृत गंभीर एवं जिसमें नायक एवं नायिका दोनों अधेड़ उम्र के थे। वैसे आँधी व्यावसायिक दृष्ट्या एक अत्यधिक सफल फिल्म रही। इस फिल्म में काफी नामी गिरामी कलाकार थे जैसे संजीवकुमार, सुचित्रा सेन, ओम प्रकाश, ओम शिवपुरी, ए.के.हंगल आदि। गीत एवं संगीत के मामले में भी यह फिल्म काफी हिट हुई। उस वर्ष के उत्कृष्ट फिल्म, उत्कृष्ट दिग्दर्शन, उत्कृष्ट कथा, उत्कृष्ट कलाकार एवं उत्कृष्ट गीत आदि पुरस्कार इसी फिल्म की झोली में आ गए। महंमद रफी, लता, किशोर

कुमार आदि द्वारा गाए गाने काफी लोकप्रिय हुए। एक फिल्म हिट होने के लिए जो कुछ चाहिए वह कमलेश्वर ने अपनी लेखनी के द्वारा फिल्म को दिया था। बहुत कम संयोग साहित्य एवं सिनेमा को लेकर मिलता है, जो दोनों को भी अपनी सफलता की ऊँचाई पर पहुँचाता है।

3) मन्नू भंडारी :

कथा साहित्य में मन्नू भंडारी एक विशिष्ट लेखिका रही है। उनके 'यही सच है', 'आपका बंटी' एवं अन्य कुछ कृतियों अच्छी फिल्में बन पड़ी है। पटकथा के क्षेत्र में मन्नू भंडारी सिद्धहस्त है।

(i) **रजनीगंधा** - मन्नू भंडारी द्वारा रचित मनोवैज्ञानिक एवं रोमांटिक कहानी 'यही सच है' के ऊपर प्रसिद्ध निर्देशक बासु चटर्जी ने 'रजनीगंधा' नामक फिल्म बनाई। अपने जीवन में आए दो पुरूषों में से किसे चुना जाए की समस्या से जुझ रही नायिका का इसमें अत्यंत भावप्रवण चित्रण है। बासु चटर्जी ने मूल कहानी को बहुत ही सहज-स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ाया है। इस फिल्म के गीत एवं संगीत काफी श्रवणीय थे, फिल्म की सफलता का यह भी एक कारण था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह फिल्म मूल कहानी का निष्ठावान फिल्मांतरण है।

(ii) **जीना यहां** - इसका भी फिल्मांकन हुआ था।

(iii) **आपका बंटी** - इस उपन्यास पर इसी नाम से फिल्म बनी थी।

(iv) **अकेली** - मन्नू भंडारी के इस कहानी का दूरदर्शन पर रूपान्तरण हुआ था।

(v) **मध्यांतर** - इस कहानी का भी फिल्मांकन दूरदर्शन पर हुआ था।

4) मोहन राकेश :

हिंदी साहित्य के नाटक एवं एकांकी क्षेत्र में अग्रगण्य नाम मोहन राकेश जी का है। इनके 'उसकी रोटी', 'आषाढ़ का एक दिन' एवं 'आधे अधूरे' आदि कलाकृतियों पर तीन फिल्में बन चुकी है जो निम्नानुसार है -

(i) **उसकी रोटी (1969)** - शुद्ध सिनेमावादी निर्देशक मणि कौल ने मोहन राकेश की कहानी 'उसकी रोटी' पर इसी नाम से एक फिल्म बनाई। यह उनकी पहली फीचर फिल्म थी। जब यह फिल्म रिलीज हुई तो इसने सबको स्तब्ध कर दिया क्योंकि रूप और आख्यान में ये अब तक के पूरे भारतीय सिनेमा से बिल्कुल भिन्न थी। इस फिल्म में बिंब, आख्यान और कार्य व्यापार का सामंजस्य पुर्णतया तोड़ दिया था। 'उसकी रोटी' ऐसी मजबूर पत्नी वालो की कहानी है, जो रोटी के लिए बस के अड्डे पर बैठे अपने पति की प्रतीक्षा करती रहती है। पत्नी जितनी सहनशील और शांत है, उसका पति सुच्चासिंह उतना ही कठोर है।

यह फिल्म व्यवसाय की दृष्टि से एकदम असफल रही। परंतु कलात्मकता की दृष्टि से निर्देशक ने कुछ नए प्रयोग किए। कहानी की अस्पष्टता, धीमी गति, अभिनय शून्यता, संवादहीनता एवं स्थिर फिल्मांकन आदि ऐसे अनेक पहलू है जो बहुत कम फिल्मों में पाए जाते है। पारंपारिक फिल्मों की आदि भारतीय दर्शकों ने इस फिल्म को सिरे से नकार दिया। ऐसा कहते है जहाँ जहाँ यह फिल्म प्रदर्शित हुई वहाँ दर्शकोंने इसकी गतिहीनता से तंग आकर तोड़फोड़ की।

(ii) **आषाढ़ का एक दिन (1971)** - वह पहला अवसर था जब हिंदी के किसी नाटक को फिल्म के रूप में ढाला गया था। उसकी रोटी के निर्देशक मणि कौल ने ही मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' पर इसी नाम से फिल्म बनाई। मणि कौल ने 'उसकी रोटी' वाली शैली यहाँ पर भी अपनाई। न्यूनतम अभिनय, सपाट संवाद एंव स्थिर फिल्मांकन। नाटक को नाटक की तरह ही फिल्माया गया। अत: यह फीचर फिल्म फिल्म की अपेक्षा फोटो प्ले या फिल्मांकित नाटक की तरह हो गयी। स्पष्ट है कि पारंपरिक मनोरंजन के आदी दर्शकों ने इसे अस्वीकार किया। व्यावसायिकता की दृष्टि से फिल्म पूरी तरह पीट गई। पर एक कलात्मक एवं प्रयोगशीलता के आधारपर इसी फिल्म की काफी सराहना हुई।

(iii) **आधे अधूरे** - मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' पर इसी नाम से निर्देशक बासु भट्टाचार्य ने फिल्म बनाई थी। ओम शिवपुरी का इस फिल्म निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान था

5) फणीश्वरनाथ रेणु :

हिंदी साहित्य में आँचलिकता को लानेवाले फणीश्वरनाथ रेणु काफी प्रसिद्ध लेखक रहे है। उनकी दो कथा कृतियों तीसरी कसम अर्थात मारे गए गुलफाम एवं 'मैला आँचल' पर फिल्मांकन का प्रयत्न हुआ है।

(i) **तीसरी कसम** (1966) - रेणु जी की प्रसिद्ध कहानी 'तीसरी कसम' अर्थात 'मारे गए गुलफाम' पर 'तीसरी कसम' नाम से फिल्म बनाई थी। इस फिल्म को इमेज मेकर्स, मुंबई के बैनर तले निर्देशक बासु भट्टाचार्य ने बनाया था। बिहार के पूर्णिया जिले के भोलेभाले गाडीवान की कहानी है जो अपने जीवन में घटनेवाली तीन घटनाओं से क्षुब्ध होकर तीन बार कसम खाता है कि वह काम कभी नहीं करेगा। इनमें से कहानी मुख्य रूप से उन परिस्थितियों का चित्रण करती है जिसमें वह गाडीवान तीसरी बार कसम खाने के लिए बाध्य होता है। वह परिस्थितियाँ और उनकी परिणति का वर्णन एवं फिल्मांकन काफी मार्मिक बन पडा है। वास्तव में तीसरी कसम नौटंकी में नाचनेवाली एक औरत और एक गाडीवान के अस्फुट प्रेम की कहानी है।

बतौर निर्माता गीतकार शैलेन्द्र एवं बतौर निर्देशक बासु भट्टाचार्य, साथ ही बतौर सिनेलेखक के रूप में रेणु जी की यह पहली फिल्म थी। तीनों ने इस फिल्म के निर्माण काफी कष्ट उठाए। फिल्म को सुचारू रूप से बनाने हेतु रेणु स्वयं मुंबई बुलाए गए थे। क्या निर्देशन, क्या छायांकन, क्या अभिनय, क्या लेखन एवं क्या गीत-संगीत आदि सभी मामलों में यह फिल्म एक अच्छी कलाकृति बन पड़ी थी। परंतु व्यावसायिकदृष्ट्या यह फिल्म औसत ही रही। 1966 में जब इसे सर्वोत्कृष्ट फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला तब यह चर्चा में आई। इसमें हीरामन की भूमिका राजकपूर तो हीराबाई की भूमिका वाहिदा रहेमान ने की थी।

(iii) **डाग्डर बाबू** - रेणु जी के प्रसिद्ध आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' पर 'डाग्डर बाबू' नाम से फिल्म बनाने की कोशिश निर्देशक नवेन्दु घोष ने की जो अपूर्ण ही रही।

6) चंद्रधर शर्मा गुलेरी :

हिंदी साहित्य को मात्र तीन कहानियाँ देनेवाले गुलेरी जी के 'उसने कहा था' नामक कहानी पर इसी नाम से फिल्म बनाई गई। कहानी 1915 में लिखी गई थी तो फिल्म 1960 में बनी। इसके निर्देशक थे मोनी भट्टाचार्य। मूल कहानी में प्रेम, कर्तव्य, युगबोध आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है, यह एक आदर्शवादी कहानी है जिसका नायक अपने वचन का निर्वाह करने के लिए अपने जीवन तक उत्सर्ग कर देता है। मूल कहानी पठनीय होने के बाद भी उसपर बनी फिल्म दर्शनीय नहीं रही। व्यावसायिक दृष्ट्या यह फिल्म असफल रही।

7) राजेन्द्र यादव :

राजेन्द्र यादव हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार, संपादक एवं प्रकाशक है। उनके 'सारा आकाश' नामक उपन्यास पर इसी नाम से फिल्म 1969 में बनी थी । निर्देशक बासु चटर्जी द्वारा निर्देशित यह पहली और आखरी श्वेत-शाम फिल्म है। इस फिल्म के श्वेत-शाम छायांकन के लिए के.के.महारान को छायांकन का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था। सारा आकाश में निम्नमध्यवर्ग में होनेवाली अनिच्छित विवाह की समस्या उठाई गई है। निम्नमध्य वर्ग का इसमें यथार्थवादी चित्रण किया गया है। यह फिल्म उपन्यास का सफल रूपांतरण है। इसमें परिवार और घर की छोटी-छोटी बातों, वस्तुओं आदि का बडा ही सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इसका आधार है, स्टूडियों के बाहर जीवन का वास्तविक अंकन। पूरी फिल्म उपन्यास के घटनास्थल, राजेन्द्र यादव के घर, आगरा में ही फिल्माई गई। 'सारा आकाश' लीक से हटकर फिल्म थी। सफलता की गारंटी के जो मुंबईया फॉर्म्यूला है उनमें से एक भी इस फिल्म में नहीं है, फिर भी छोटे बजट की यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर काफी सफल हुई।

8) विजयदान देथा :

इनकी लगभग तीन कलाकृतियों पर फिल्में बन चुकी है।

(i) **दुविधा (1973)** - विजयदान देथा की कहानी पर निर्देशक मणि कौल ने 'दुविधा' नाम से एक कलात्मक फिल्म बनाई। इसे काफी सराहा गया परंतु बॉक्स ऑफिसपर यह फिल्म बुरी तरह पीट गई। वैसे मणि कौल के निर्देशन की काफी सराहना हुई। मणि कौल के रचनात्मक व्यक्तित्त्व की संश्लिष्टता कुछ इस प्रकार की है कि वे समझौता नहीं कर सकते। दुविधा देखने बाद ब.व.कारंत ने कहा था - दुविधा हमें समझ देती है। मणि कौल निर्देशकों के निर्देशक है।[1]

(ii) **पहेली (2005)** - यह फिल्म देथा के कहानी 'पहेली' पर आधारित थी। अभिनेता और फिल्मकार अमोल पालेकर ने प्रसिद्ध साहित्यकार विजयदान देथा की कहानी पर फिल्म बनाते समय इसमें परिवर्तन करने के लिए उनसे अनुमति मांगी थी। असल में अमोल पालेकर लेखक की भावना की कद्र करना चाहते थे। यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर औसत रही परंतु इसकी कलात्मकता की काफी चर्चा हुई। शाहरूख खान, राणी मुखर्जी, अनुपम खेर, अमिताभ बच्चन आदि दिग्गज कलाकार इसमें थे।

(iv) **परिणति** - यह फिल्म देथा के ही साहित्यिक रचना पर आधारित थी।

9) रमेश बक्शी :

इनके 'अठराह सूरज के पौधे' नामक उपन्यास पर 27 डाउन वाराणसी एक्सप्रैस (1973) नाम से फिल्म बनी थी। निर्देशक अवतार कौल ने एन.एफ.डी.सी. के सहयोग से यह अपनी पहली फिल्म बनाई थी। 27 डाउन के माध्यम से हम एक अत्यंत प्रतिभावान और प्रतिबद्ध फिल्मकार के कृतित्व से परिचित हो पाते है। अवतार कौल प्रतीकात्मकता और सांकेतिकता को कथातत्व पर हावी नही होने देते। 27 डाउन में कथा का एक निश्चित क्रम है, और उसे पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। 27 डाउन एक ऐसे युवक की कथा है, जो अपने पिता के कठोर अनुशासन तथा परम्परागत मान्यताओं का विरोध नहीं कर पाता। 27 डाउन मूल उपन्यास का एक अत्यंत सफल फिल्मांतरण है। वस्तुत: किसी प्रयोगवादी और मनोवैज्ञानिक उपन्यास का फिल्मांतरण किस प्रकार किया जाना जाहिए । 27 डाउन इसका अच्छा उदाहरण है। मूल कृति में निष्ठा रखते हुए भी उपन्यास के आधार पर बनाई गई एक स्वतंत्र कलात्मक फिल्म है जो निर्देशक की मौलिक सोच और फिल्म कलापर उसके जबरदस्त अधिकार दोनों ही चीजों को दर्शाती है।[2] व्यावसायिक दृष्ट्या यह फिल्म भले ही असफल रही है एक कलात्मक फिल्म के तौर इसे अवश्य जाना जाएगा।

10) निर्मल वर्मा :

इनके द्वारा रचित कहानी 'मायादर्पण' पर इसी नाम से 1972 में एक फिल्म बनी, जिसका निर्देशन प्रयोगवादी निर्देशक कुमार साहनी ने किया था। सामान्य रास्ते मनोरंजन के आदत से मजबूर साधारण दर्शकों के पल्ले ऐसी फिल्में नहीं पडती। इसलिए बॉक्स ऑफिस पर हिट होने का सवाल ही नहीं है। मूल रूप से निर्देशक ने कहानी के मूल कथ्य को आधार नहीं बनाया अपितु उसके मौन और हल्के संवादों को दृश्य में रूपांतरित किया है। तरन का अंतरद्वन्द्व, बाबू की कुछ न कह पाने की कुंठा, बुआ का भय और तत्कालीन परिवेश फिल्म में पूरी तरह से मुखरित हुए है। युवा मन की व्यथा को सामने लाने में फिल्म समर्थ हुई है। फिल्म के शिल्पगत सौंदर्य को देखकर ही मायादर्पण को वर्ष 1972 की सर्वश्रेष्ठ हिंदी फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार दिया गया था। साथ ही लोकोनों फिल्म समारोह में कार्ज एन्ड रीगर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। कुमार साहनी पैरिस के न्यू वेब के महत्वपूर्ण फिल्मकार राबर्ट ब्रेसाँ के सहायक के रूप में काम कर चुके है। अत: उनका प्रभाव इस फिल्म पर भी पड़ा।

---

1. भारतीय सिने सिद्धांत, अनुपम ओझा, 131

2. हिंदी साहित्य और सिनेमा, विवेक दुबे, 129

11) भीष्म साहनी :

विभाजन की त्रासदी एवं साम्प्रदायिकता को केन्द्र में रखकर रचे गए उपन्यास 'तमस' पर इसी नाम से फिल्म आई थी। प्रसिद्ध निर्देशक गोविन्द निहलानी ने इसे सन 1986 में खास दूरदर्शन के लिए बनाया वैसे यह पाँच घंटे की लंबी फिल्म थी। उसे काँट छाँट कर बाद में फिल्म का रूप दिया था। इस उपन्यास का विषय एवं गोविन्द निहलानी के फिल्मों के विषय एक ही था- हिंसा और विभाजन की त्रासदी। तमस सस्ते मनोरंजन के लिए नही थीं, वह एक सर्जनात्मक प्रयास था। जिसमें पुलिस, प्रशासन, राजनीति तथा समाज के भीतर व्याप्त भ्रष्टाचार और हिंसा को सही परिप्रेक्ष्य में देखा गया। सिनेमा समाज को बदलने का एक सशक्त माध्यम है, को माननेवाले निर्देशक की यह फिल्म थी। व्यावसायिकता के परिप्रेक्ष्य में फिल्म भले ही कमजोर रही हो परंतु कलात्मकता एवं उद्देश्य की दृष्टि से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण फिल्म है।

12) संजय सहाय :

इनकी कला कृति पर गौतम घोष ने 'पतंग' नाम की फिल्म बनाई थी। जो 1993 में प्रदर्शित हुई थी। निर्माता संजय सहाय एवं दूर्वा सहाय थे।

13) आलमशाह खान :

इनके 'किराए की कोख' नामक कृति पर 'कोख' नाम से आर.एस.विकल ने फिल्म बनाई थी।

14) कुसुम अंचल :

इनके 'उसकी पंचवटी' शीर्षित कृति पर 'पंचवटी' नामक फिल्म प्रसिद्ध निर्देशक बासु भट्टाचार्य ने बनाई थी। जो 1986 से रिलीज हुई थी।

15) शिवमूर्ति :

इनके 'तिरिया चरितर' नाम की साहित्य कृति पर 'त्रिया चरित्र' नाम से बासु चटर्जी ने फिल्म बनाई थी।

16) शैवाल :

नई पीढ़ी के प्रमुख लेखकों में से है-शैवाल। शैवाल ने फिल्मों के लिए काफी लिखा है। उनकी रचना पर बनी फिल्में 'दामुल' और 'मृत्युदंड' बेहद सफल और प्रसिद्ध हुई। दामुल को तो 1984 में राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। मराठी नाटककार जयवंत दळवी के नाटक पर बनी फिल्म 'पुरूष' सहित कई अन्य फिल्मों के लिए शैवाल ने पटकथा और संवाद भी लिखे ।

(i) **दामुल (1984)** - शैवाल कृत 'दामुल' पर इसी नाम से प्रकाश झा ने फिल्म बनाई थी जो 1984 में प्रदर्शित हुई थी। हिंदी भाषी वातावरण को केन्द्र में रखकर इसकी रचना की थी। दामुल का अर्थ होता है फाँसी। फिल्म का कथानक बिहार के गाँवों मे प्रचलित पनाह व्यवस्था पर आधारित है, जिसमें जमीनदार कुछ खास बंधुआ मजदूरों को चनुकर उन्हें आश्रय देता है, और फिर उनसे जानवरों की चोरी करवाता है। जो गरीब मजदूर पीढी-दर पीढी गले तक कर्ज में डुबे हुए है, उनके पास इसके सिवा कोई चारा नहीं कि वह जमींदार के इशारों पर अपराधों में संलग्न रहें। इस फिल्म में अन्य देहाती समस्याओं को भी छुआ गया है। जैसे जातीय झगडे, मजदूरों के विवाद, हरिजनों पर अत्याचार और आतंकवादी सामंती ढाँचा - जिसमें फँसा किसान निकलने का कोई रास्ता नहीं पाता। वैसे दामुल व्यावसायिक धरातल पर असफल रही थी। परंतु इसकी काफी सराहना हुई। वास्तव में इसमें एक यथार्थवादी समस्या का समुचित निर्वाह किया गया था।

(ii) **मृत्युदंड** - यह फिल्म शैवाल की रचना पर प्रकाश झा ने ही बनवाई थी। बिहार के सामन्ती वातावरण, नवधनाढयों और स्त्री की समस्याओं को केन्द्र में रखकर एक सफल फिल्म का निर्माण हुआ था। इस फिल्म का ढाँचा व्यावसायिक होते हुए भी

यथार्थवादी था।

17) धर्मवीर भारती :

हिंदी साहित्य में पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में 'धर्मयुग' की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, उसी 'धर्मयुग' के संपादक थे धर्मवीर भारती।

(i) **सूरज का सातवाँ घोडा (1992)** - प्रसिद्ध निदेशक श्याम बेनगल ने इनकी कहानी 'सूरज का सातवां घोडा' नामक कहानी इसी नाम से फिल्म बनाई थी। कहानी मूल रूप में अपनी शिल्प की दृष्टि से हिंदी साहित्य में एक अनोखा प्रयोग साबित हुई थी। इसमें एक कहानी में अनेक कहानियाँ और अनेक कहानियों में एक कहानी की तकनीक थी। जिसे श्याम बेनेगल ने बखुबी पर्दे पर उतारा था। मानवीय जटिलताओं और परिवेश के अनोखेपन को बहुत ही कलात्मकता से इनमें चित्रित किया गया है। कहानी के केन्द्र में माणिक मुल्ला (रजत कपूर) है जो अपने दोस्तों को कहानियाँ सुनाता है। ये कहानियाँ तीन-चार परिवारों के युवक-युवतियों पर अनोखे ढंग से फोकस करती है। चुस्त पटकथा और फिल्मांकन की कल्पनाशील शैली से यह फिल्म काफी अच्छी बन पडी है। वैसे फिल्म व्यवसाय की दृष्टि से असफल रही परंतु कला क्षेत्र में इसे काफी सराह गया।

(ii) **बंद गली का आखिरी मकान** - दूरदर्शन पर इसका फिल्मांकन हुआ था।

(iii) **गुनाहों का देवता** - भारती जी के इस प्रसिद्ध उपन्यास का भी फिल्मांकन हुआ था।

18) राजिन्दरसिंह बेदी :

बेदी जी ने फिल्मों के क्षेत्र मे काफी काम किया है। इनकी तीन कृतियों पर फिल्में बनी है।

(i) **एक चादर मैली सी** - निर्देशक सुखेवंत ढांढा ने बेदी जी की रचना 'एक चादर मैली सी' पर इसी नाम से फिल्म बनाई थी। पति के जवानी में ही अकस्मिक मर जाने के बाद उसके छोटे भाई से विवाह करने की जो सामाजिक प्रथा है, उसे इस फिल्म में दिखाया गया है। जिस भाभी को समाज में माँ के रूप में देखा जाता है, भाई के मर जाने के बाद उसी से विवाह करना यह बात देवर को अन्याय प्रतीत होती है। इस मामले में भाभी और देवर असहज हो जाते है। फिल्म में देवर की भूमिका ऋषि कपूर तो भाभी की भूमिका हेमामालिनी ने निभाई थी।

(ii) **दस्तक** - राजेन्द्रसिंह बेदी ने अपनी ही एक कृति पर स्वयं फिल्म बनाई थी, जो दस्तक नाम से प्रदर्शित हुई थी। यह फिल्म 1970 में रिलीज हुई। एन.एफ.डी.सी. के सहयोग से इसका निर्माण हुआ था। इस फिल्म में सेक्स से संबंधित प्रश्नों को केंद्र में रखा गया है। फिल्म व्यवसाय और कला दोनो क्षेत्रों में असफल ही रही। बेदी जी ने सिनेमा के लिए काफी वर्षों तक कहानी एवं संवाद लिखते रहते। यही नहीं फिल्मों के हिट होने के कई फॉर्म्यूले पैदा किए परंतु स्वयं फिल्म निर्देशित करके इसमें वे सफल नहीं हुए। फिल्म को देखकर लगता है कि बेदी की पकड सिनेमाध्यम पर नहीं।

(iii) **गर्म कोट** - बेदी जी के 'गरम कोट' नामक रचना पर 'गर्म कोट' नाम से अमर कुमार के निर्देशन में फिल्म बनी थी।

19) कृष्ण चंदर :

हिंदी - उर्दू के श्रेष्ठ लेखक कृष्णचंदर ने अपनी ही एक कृति 'यहाँ से शहर को देखो' पर इसी नाम से खुद के निर्देशन में ही एक फिल्म बनाई थी।

20) हसन अब्बास :

इनके द्वारा रचित 'आनंदी' नामक रचना पर प्रसिद्ध फिल्मकार श्याम बेनेगल ने 'मंडी' नाम से एक फिल्म बनाई थी। कला के क्षेत्र में इस फिल्म की काफी सराहना हुई।

21) इंद्रराज आनंद :

इनके 'पैसा' नामक रचना पर इसी नाम से फिल्म बनाई गई थी, जिसके निर्देशक पृथ्वीराज कपूर थे।

22) मिर्झा हादी रुसवा :

इनके उर्दू में रचित उपन्यास 'उमराव जान' पर निर्देशक मुजफ्फर अली ने इसी नाम से फिल्म बनाई थी, जो 1982 में रिलीज हुई थी। इस फिल्म में एक तवायफ की जिंदगी का बहुत ही मार्मिक फिल्मांकन किया गया है। इसका गीत - संगीत काफी कर्णमधुर था, साथही अभिनेत्री रेखा की भूमिका भी अच्छी चर्चित हुई थी।

23) खाजा अहमद अब्बास :

इनके द्वारा रचित 'दिल ही तो है' नामक रचना पर गुलजार ने 'चमत्कार' बनाई थी।

24) भगवतीचरण वर्मा :

हिंदी साहित्य में भगवतीचरण वर्मा अपने उपन्यासो के जरिए काफी प्रसिद्ध हुए। उनके द्वारा रचित 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास पर इसी नाम से फिल्म बनी थी। सन 1941 में केदार शर्मा ने इसे बनाया था। इसी फिल्म को रंगीन फिल्मों के जमाने में सन 1964 में उन्होंने पुन: बनाया। किंतु पहली फिल्म में उन्होंने उपन्यास के चरित्रों के साथ ज्यादा न्याय किया था। उपन्यास में पाप और पुण्य के दार्शनिक विश्लेषण को कथा के माध्यम से यथार्थ जमीन पर लाकर परखने की अद्‌भुत प्रक्रिया का निर्वहन किया गया है। किंतु दूसरी बार बनी फिल्म पहली की अपेक्षा व्यावसायिक हथखंडों से लैस थी। इसमें काफी मसाला भरा गया था। यही नहीं पात्रों मे भी काफी बदलाव किया गया। नई फिल्म में श्वेतांक के चरित्र को कॉमेडियन में बदलकर उपन्यास की गरिमा का क्षरण किया गया है। पहली फिल्म (1941) में उपन्यास के कथानक के साथ पूर्ण रूप से न्याय किया गया था। जो भी हो यह फिल्म काफी चर्चा का विषय रही थी।

25) पं. सुदर्शन :

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले के भारत के तीन बडे स्टूडियों में से एक न्यू थिएटर ने 1935 में पं. सुदर्शन के नाटक 'भाग्यचक्र' पर 'धूपछाँव' नाम से फिल्म का निर्माण किया। पं. सुदर्शन लेखन होने के साथ-साथ एक अच्छे गीतकार भी थे। स्वयं उन्होंने इस फिल्म के कुछ गीत लिखे थे। धूपछाँव एक घटनाप्रधान फिल्म थी और अपनी कमियों के बावजूद बॉक्स ऑफिसपर सफल रही। निर्देशक नितिन बोस ने इस फिल्मपर काफी मेहनत की थी। कथा, गीत-संगीत, अभिनय एवं निर्देशन आदि सभी में फिल्म उत्कृष्ट साबित हुई।

26) सेठ गोविन्ददास :

सन 1935 में सेठ गोविन्ददास ने अपनी ही कृति 'धुँधाधार' पर इसी नाम की फिल्म का निर्माण किया। सेठ गोविंददास के अलावा मध्यप्रदेश के भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री द्वारि का प्रसाद मिश्र भी इसके निर्माता थे। शीर्षक धुँधाधार का संबंध जबलपुर के भेडाघाट के पास स्थित जलप्रपात से है। इसकी कथा क्षत्रिय और गौड़ जातियों के ताने-बाने से बुनी गई थी। इस कृति और फिल्म के कर्ताधर्ता सेठ गोविन्ददास होने से दोनो के बीच अच्छा समन्वय था। कृति का फिल्मांकन निष्ठापूर्वक किया गया। इस फिल्म के निर्देशक थे श्री सुकुमार चटर्जी। इसमें उस वक्त के काफी नामी गिरामी कलाकारों ने काम किया था। फिल्म काफी चर्चित रही थी।

27) होमवती :

इनके 'गोटे की टोपी' नामक कहानी पर 'सिन्दूर' नाम से फिल्म सन 1947 में बनी थी। वैसे इस फिल्म की कथा किसकी थी इसको लेकर विवाद है। प्रसिद्ध निर्देशक एवं अभिनेता किशोर साहू जिन्होंने की इस फिल्म में नायक की भूमिका

भी की थी, कहानी को अपनी स्वयं की मानते है। वैसे मेरठ की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती होमवती की यह कहानी है ऐसा लगता है। जो भी हो, इसमे विधवा-विवाह की वकालत की गई थी। फिल्म की पटकथा, संवाद अभिनय आदि सभी क्षेत्रो मे एक अच्छा समन्वय था, निर्देशन भी बहुत प्रभावी था. फिल्म की काफी सराहना हुई थी।

28) गजानन माधव मुक्तिबोध :

हिंदी के श्रेष्ठ कवि मुक्तिबोध की कहानी 'सतह से उठता आदमी' पर इसी नाम से फिल्म बनी थी। इसका निर्देशन मणि कौल ने किया था जो 1980 में प्रदर्शित हुई। वैसे वह फिल्म मुक्तिबोध के एककहानी नहीं तो समस्त कृतित्व पर आधारित थी। इस फिल्म में भी मणि कौल साहित्य और फिल्म के संबंधों पर प्रयोगवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए अनेक पाठों (कविता, निबंध और कहानियों) को बोल कर पढ़वाकर रिकॉर्ड कर लेते है और फिर उन्हे फिल्म मे वॉयस ओवर के रूप में प्रयोग करते है। इसमे पूंजीवादी सभ्यता के ही दो पहलू दिखाए है। एक ओर रामनारायण है जो पतनोन्मुख पूंजीवाद का प्रतीक है और दूसरी ओर कृष्णस्वरूप है जो उसी पूंजीवाद को अपनाने के लिए उत्सुक है, लालायित है। वैसे फिल्म में कथा नाममात्र की है। सत्य तो यह है कि पारंपरिक फिल्मों के समान इस फिल्म में न तो कोई प्रारंभ है, न मध्य और न अंत। इसे पारंपरिक अर्थ में फिल्म कहना भी कठिन है। स्वयं निर्देशक मणि कौल कहते है यह फिल्म नियमित कथा चित्र की तरह नही है। उसके लिए तो पटकथा भी नही लिखी गई। जिस प्रकार कहानी को अकहानी, कविता को अकविता कहा जाता है उसी तरह सतह से उठता आदमी को अफिल्म कहा जाना जाहिए। फिल्म सामान्य दर्शकों के लिए असंप्रेषणीय ही रही। एक बात है कि इस बहाने मुक्तिबोध की किसी रचना को दृश्य-श्राव्य माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया गया। यह फिल्म मूल रूप में कलात्मक एवं प्रयोगात्मक बन कर ही रही। व्यावसायिक दृष्ट्या सफल होने का तो सवाल ही नहीं उठता।

29) जैनेन्द्र :

मनोवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्रकुमार के एक उपन्यास 'त्यागपत्र' पर इसी नाम से निर्देशक रमेश गुप्ता ने 1978 में एक फिल्म बनाई थी। 'त्यागपत्र' की केन्द्रीय समस्या यह है कि स्त्रीत्व और सतीत्व में से क्या अधिक श्रेयस्कर और वरणीय है?[1] इस समस्या को इसमें काफी विचारोत्तेजक एवं मार्मिक ढंग से उठाया गया है। वैसे इस कृति का फिल्मांकन तो अच्छे ढंग से हुआ परंतु दर्शकों ने इसे नकार दिया। फिल्म कब बनी और कब गई यह भी पता न चल पाया। इसमें न तो कोई बड़ा कलाकार या न गीत-संगीत। एक कलात्मकत एवं समस्या प्रधान फिल्म के रुप में भले ही यह अच्छी हो व्यावसायिक दृष्ट्या तो पूर्णतया असफल हो गई।

30) आचार्य चतुरसेन शास्त्री :

हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यासकार आ. चतुरसेन शास्त्री के 'धर्मपुत्र' नामक उपन्यास पर इसी नाम से प्रसिद्ध निर्देशक यश चोपडा ने 1961 में एक फिल्म बनाई। बी.आर. फिल्म के बैनरतले एक व्यावसायिक रूप से अत्यत सफल फिल्म साबित हुई। 'धर्मपुत्र' हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। जिसका कथानक मुख्य रूप से एक अवैध मुस्लिम बालक से संबंधित है। इस लडके को एक हिंदू परिवार अपना लेता है। वैसे उपन्यास की कथावस्तु एवं फिल्म में काफी अंतर है। व्यावसायिकता के दबाव में काफी परिवर्तन फिल्म में देखने को मिलते है। इतना सब होने के बावजूद बड़ा बैनर, उत्कृष्ट निर्देशक, बंडे-बडे कलाकार एवं गीत-संगीत के आधार पर यह फिल्म काफी सफल हुई। उपन्यास से कहीं ज्यादा प्रसिद्धि फिल्म को मिली, यह फिल्म की जीत ही कही जाएगी।

---

1. हिंदी उपन्यास का विकास, मयुरेश, 72

31) विनोद कुमार शुक्ल :

इनके द्वारा रचित 'नोकर की कमीज' नामक उपन्यास पर इसी नाम से फिल्म बनी थी। जो 1999 में रिलीज हुई थी। निर्देशक थे मणि कौल। इसमें एक मध्यवर्गीय बाबू के जीवन की महागाथा है। जिसमे छोटे प्रसंगों के माध्यम से उनके जीवन की तल्ख सच्चाईयों को उजागर किया है।

32) श्रीकाल शुक्ल :

इनके प्रसिद्ध व्यंग उपन्यास 'रागदरबारी' का फिल्मांकन धारावाहिक के रूप में हुआ था, जिसे दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया था। दर्शकों में वह काफी लोकप्रिय रहा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में हो रहे भले-बूरे बदलावों को इसमें व्यंगात्मक रूप में दिखाया गया है।

33) लाला श्रीनिवासदास :

हिंदी के पहले उपन्यास के रचयिता लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' पर टेलीविजन के लिए धारावाहिक बनाई थी। 1889 में लिखित इस उपन्यास में दोस्तो के बीच लालच और फिर उसे बदनाम कर अपने मंतव्यों को साधनेवाले रिश्तों की यह कहानी है। दोस्तों का फँसाना और फिर उसमें से सीख लेकर अच्छा आचरण करना ऐसी इसकी उपदेशपरक कथावस्तु है। डी डी नैशनल पर 2011 में इसका प्रसारण धारावाहिकों के रूप में हुआ। संजय डी.सिंह. निर्देशित इस धारावाहिक की पटकथा और संवाद अमित कुमार में लिखे है। इस धारावाहिक के प्रस्तुतकर्ता है श्रीकांत सक्सेना और निर्माण दूरदर्शन के केन्द्रीय कार्यक्रम निर्माण केन्द्र की ओर से किया गया था।

34) महादेवी वर्मा :

घीसा, भाभी आदि अनेक संस्मरणों का दूरदर्शन ने फिल्मांकन किया था। जिसकी पटकथाएँ मन्नू भंडारी ने लिखी थी।

35) सूरेन्द्र वर्मा :

'मुझे चाँद चाहिए' इस उपन्यास का भी फिल्मांकन हुआ था।

36) इस्मत चुगताई :

निर्देशक एम.एस. मथ्यू की फिल्म 'गरम हवा' इस्मत चुगताई के कहानी पर आधारित थी। यह फिल्म आजादी के समय हिंदुस्थान-पाकिस्तान बँटवारो की पृष्ठभूमि पर आधारित मानवीय मूल्यों की एक मार्मिक अभिव्यक्ति थी जिसमें एक मुख्य भूमिका बलराज साहनी ने निभाई थी।

37) एक अधुरी कहानी :

इस फिल्म के संवाद आँचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु ने लिखे थे। कहानी सुबोध घोष की तो पटकथा मृणाल सेन ने लिखी थी। यह फिल्म हिंदी में 1971 में रिलीज हुई थी।

38) त्रिसंध्या : यह फिल्म भी एक साहित्यिक कृति पर बनी थी।

अबतक हमने हिंदी की उन साहित्यिक कृतियों को देखा है जिनको फिल्माया गया है। फिर वह फिल्मांकन वृत्तचित्र, धारावाहिक, टेलिफिल्म एवं सिनेमा अर्थात फीचर फिल्म के रूप में क्यों नही। मतलब हिंदी के साहित्यकारों द्वारा रचित किसी भी विधा पर बनी फिल्मों को हमने देखा है। इसके बाद हम ऐसे हिंदी के साहित्यकारों को देखेंगे जिन्होंने हिंदी फिल्मों के निर्माण में कोई न कोई भूमिका अदा की है, भले ही उनका आधार उनकी साहित्यिक कृतियाँ न हो। हिंदी साहित्य में अपनी रचनाओं के माध्यम से और फिल्मों में अपनी लेखनी के माध्यम से ये लेखक प्रसिद्ध रहे है। मात्र फिल्मों के लिए लिखनेवाले इन

सिनेलेखको की सूची इस प्रकार है-

1) प्रेमचंद - अपने सरस्वती प्रेस को जो आर्थिक नुकसान हुआ था। उसे भरने के लिए मुंबई से फिल्मो के लिए लिखने के लिए आमंत्रण को प्रेमचंद नकार न सके। यह वह समय है जब प्रेमचंद अपनी साहित्यिक प्रतिभा के चरम शिखर पर थे। 1934 में मुंबई के अजंता सिनेटोन नामक फिल्म कंपनी ने सिनेकथा लिखने के लिए मासिक 750 एवं सालाना 9000 के कॉंट्रेक्ट पर प्रेमचंद को ले लिया। प्रेमचंद मई 1934 को मुंबई आए। उन्होंने अजंता सिनेटोन के फिल्मों के लिए छः कहानियाँ लिखी। उनमें से पहली 'मिल मजदूर' भी, जिसके उपर 1934 में फिल्म बनी। परंतु कहानी और फिल्म में काफी अंतर आया। सामाजिक जागृति प्रेमचंद का तो पैसे कमाना कंपनी का ऐसे दो विरोधाभासी हितों ने यहां काम करना शुरू किया। नतीजा प्रेमचंद का जी फिल्मों से ऊबने लगा। निर्माता और निर्देशक के इशारों पर बाजारू कहानियाँ लिखना प्रेमचंद सहन नहीं कर पाए और बनारस वापस आए।

2) कमलेश्वर - हिंदी में साहित्यिक के रूप में एवं फिल्मों में फिल्मकार के रूप में सबसे अधिक सफलता कमलेश्वर को ही मिली। कमलेश्वर नोकरी ही टेलीविजन में करते थे। इस कारण उन्हें रचना के फिल्मांकन गहरा अनुभव था। उनके काली आँधी, डाक बंगला, बदनाम बस्ती आदि कृतियों पर तो फिल्में बनी है। परंतु फिल्मों के लिए गैरसाहित्यिक भी खूब लिखा। हिंदी की कई हिट फिल्मों के लिए कमलेश्वर ने सिनेलेखन किया। जैसे सारा आकाश, अमानुष, छोटी सी बात, राम बलराम, साजन की सहेली, आनंद आश्रम, द बर्निंग ट्रेन, सौतन, यह देश, लैला, प्रीति, सौतन की बेटी आदि फिल्मों के लिए संवाद एवं स्क्रीनप्ले तो आँधी, मौसम, रंग-बिरंगी आदि के लिए पटकथा लिखी।

3) पाण्डेय बेचेन शर्मा उग्र - इन्होंने 1935 में आजादी, रतनमंजरी जैसे फिल्मों की कहानी लिखी। कहानी के साथ साथ उग्र जी ने संवाद एवं पटकथाएँ भी लिखी।

4) भगवतीचरण वर्मा - इनके उपन्यास 'चित्रलेखा' पर तो फिल्म बनी ही थी, आगे चलकर इन्होंने बॉम्बे टॉकीज में 'किस्मत' नामक फिल्म के संवाद भी लिखे।

5) अमृतलाल नागर - इन्होंने बंबई इंडिया आर्टिस्ट लि. संस्था में फिल्मों के लिए काम किया उनकी पहली फिल्म का नाम था 'बहुरानी'। उन्होने करीब 20 फिल्मों के लिए काम किया। राजा, कुँआरा बाप जैसी हिंदी फिल्मों की पटकथा भी उन्होंने ही लिखी।

6) उपेन्द्रनाथ अश्क - हिंदी के प्रसिद्ध नाटककार अश्क ने 1945 में 'मजदूर' तथा फिल्मिस्तान की फिल्म 'सफर' की पटकथा एवं संवाद लिखे।

7) नरेन्द्र शर्मा - हिंदी के प्रसिद्ध गीतकार स्व.नरेंद्र शर्मा बॉम्बे टॉकिज से सम्बद्ध थे। 'बंधन' नामक फिल्म के लिए उन्होंने पहली बार गीत लिखे। उन्होंने राजकमल की मतवाला शायर रामजोशी, मेरा सुहाग, नरसिंह अवतार, भाभी की चुडियाँ तथा सत्यम शिवम सुंदरम जैसी हिट हिंदी फिल्मों के लिए हिन्दी गीतों की रचना की।

8) हरिवंशराय बच्चन - हालावादी कवि हरिवंशराय बच्चन ने काफी हिंदी फिल्मों के लिए गीत लिखे। जिनमें आलाप, मिली, सिलसिला, फिर भी आदि प्रमुख फिल्में है।

9) नीरज - प्रसिद्ध हिंदी गीतकार नीरज ने भी हिंदी फिल्मों के लिए गीत लिखे। नई उमर की नई फसल, प्रेम पुजारी, तेरे मेरे सपने, मंझली दीदी, मेरा नाम जोकर, गैम्बलर आदि फिल्मों के लिए उन्होंने गीत लेखन किया।

10) डॉ. राही मासुम रजा - हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार राही मासुम रजा फिल्मों के श्रेष्ठ लेखक रहे है । उन्होने करीब तीस सौ अधिक फिल्मों के लिए लेखन किया है । मै तुलसी तेरे आँगन की, मांग भरो सजना अंधा कानून, जूली, एक ही भूल

आदि फिल्मों की कथाएँ रजा जी ने लिखी थी । उन्हे सबसे ज्यादा प्रसिद्धी महाभारत के संवाद एवं पटकथा लिखने से मिली ।

11) गोपाल सिंह नेपाली - इन्होने काफी फिल्मी लेखन किया है, जो कहानी, संवाद एवं पटकथा के रूप में है।

12) पण्डित मुखराम शर्मा - जिन्हें शुद्ध रूप से सिनेलेखक कह सकते है, ऐसे जो एक दो नाम है उनमें पं. मुखराम शर्मा अग्रणी है। पं. मुखराम शर्मा की कहानियों पर बनी फिल्मे सफलता की गारंटी मानी जाती थी। यही वे पहले हिन्दी लेखक है जिनके नाम से फिल्में बिकती थी और फिल्म के हर पोस्टर में शीर्ष पर पं. मुखराम शर्मा का नाम लिखा रहता था। वे मूल रूप से सिने कहानीकार थे। उनकी कहानियाँ सिनेमा के लिए लिखी गई थी। औलाद, एक ही रास्ता, सहारा, धूल का फूल, साधना, सन्तान और तलाक उनकी प्रमुख फिल्में थी।

13) इन्द्रराज आनंद - ये मद्रास की फिल्म कंपनी से जुडे हुए थे।

14) राजेन्द्र कृष्ण - ये भी मद्रास की फिल्म कंपनी से जुडे सिनेलेखक थे।

15) अख्तर मिर्जा - 'नया दौर' नामक फिल्म की कहानी लिखी थी।

16) कमाल अमरोही - 'दायरा' नामक फिल्म की कहानी लिखी थी।

17) ध्रुव चटर्जी - 'चिराग कहां रोशनी कहां' फिल्म की कहानी लिखी थी।

18) भानुप्रताप - बूट पालिश नामक फिल्म की कहानी लिखी थी।

19) जिया सरहदी - इन्होंने भी फिल्मों के लिए लेखन किया है।

20) आगा जानी कश्मीरी - इन्होंने फिल्मों के लिए संवाद लेखन किया।

21) ख्वाजा अहमद अब्बास - इन्होंने काफी हिट एवं मौलिक फिल्मों के लिए कहानियाँ लिखी। आवारा, डा. कोटनीसकी की अमर कहानी, मुन्नी, शहर और सपना, चार दिल चार राहे, दो बूंद पानी, सात हिंदुस्थानी आदि के लिए कहानी लिखी।

22) राजेन्द्र सिंह बेदी - ये साहित्यिक होने के साथ-साथ फिल्मकार भी थे। इन्होंने अनुराधा, मेम दीदी, दस्तक एवं फागुन आदि फिल्मों के लिए लेखन किया है।

23) कृष्ण चंदर - आधुनिक कथासाहित्य में कृष्णचंदर उच्च कोटि के लेखक है। फिल्मों के लिए वे काफी साल लिखते रहे। जिनमें संवाद और कहानियाँ प्रमुख है। परंतु वे फिल्मी लेखक के रूप में स्थापित नहीं हो पाए जितने की साहित्यकार के रूप में।

24) गुलजार - फिल्मी लेखक के रूप में जिन्हें सर्वाधिक सफलता मिली उनमें एक नाम गुलजार का भी है। उन्होंने हषिकेश मुखर्जी के साथ कई हिट फिल्मों की कहानियाँ, संवाद एवं पटकथाएँ लिखी। आगे चलकर उन्होंने अपनी ही कहानियों को निर्देशित एवं निर्मित किया। उनकी प्रमुख फिल्में है - मेरे अपने, परिचय, कोशिश, खुशबू आदि।

25) गुलशन नंदा - जिन्हें विशुद्ध रूप से सफल सिनेलेखक कह सकते है, वे है गुलशन नंदा। फिल्में हिट होने के लिए कहानी में जो नाटकीयता, हिंसा, सेक्स, मारधाड, रहस्यमयता एवं गॉसिप चाहिए उसकी सही पूर्ति नंदा जी की कहानियाँ करती है। हिंदी साहित्य के मठाधीश एवं ठेकेदारों ने इनके साहित्य को घासलेटी साहित्य के अंतर्गत भले ही रखा हों, फिल्मों में वे काफी सफल रहे। खिलौना, काजल, नीलकमल आदि उनकी चर्चित फिल्में है।

---

1. हिंदी चलचित्रों में साहित्यिक उपादान, डॉ. विश्वनाथ मिश्रा

हिंदी साहित्य, साहित्यकार और हिंदी सिनेमा :

अब तक हमे हिंदी साहित्य पर बनी फिल्मो की चर्चा की है। साथ ही ऐसे साहित्यकारो की भी जिन्होंने विशुद्ध रूप से बतौर सिनेलेखक सिनेमा के लिए काम किया है। इनमे कुछ कृतियाँ एवं कुछ साहित्यकारो को छोड़ दिया जाए तो स्थिति बहुत निराशाजनक है। पूरे विश्व में सबसे ज्यादा फिल्मे भारत में बनती है पर उन फिल्मो में हिंदी साहित्य का योगदान नगण्य है। ऐसा क्यों? जबकी हिंदी के मुकाबले बंगला और मराठी की स्थिति इस मामले में अच्छी है। इस मामले पर गंभीर विचार होना आवश्यक है।

सबसे पहले सिनेमा और साहित्य के अन्तर्संबंध को देखेंगे। आधुनिक सौंदर्यशास्त्र के निर्माण में सिनेमा और साहित्य दोनों का पर्याप्त योगदान है। सिनेमा के उदयकाल से ही फिल्म पर साहित्य का प्रभाव सर्वमान्य है। परंतु आधुनिक साहित्य पर फिल्म का प्रभाव भी काफी गहराई तक लक्षित हो रहा है। एक ओर जहां फिल्म विधा साहित्य विधा में पर्याप्त समानता है, वहीं फिल्म तकनीक और साहित्यिक शिल्प में विशेष अंतर नही है। फिल्मी और साहित्यिक समीक्षा में आदानप्रदान की अच्छी संभावना है। फिल्म विधा का ज्ञान जहां पाठक को श्रेष्ठ रचना मे दृश्य-श्रव्य गुणों के उद्घाटन का अवसर देता है, वहीं साहित्य-ज्ञान फिल्म समीक्षा में गहराई और दृष्टि प्रदान करता है। मूलत: फिल्म और साहित्य कथा कहने की कलाएँ (Narrative Arts) है। यदि हम साहित्य को आख्यानमूलक कला के रूप में और पाठक के मस्तिष्क को बिम्बों और ध्वनियों के सर्जक के रूप मे देखें तो निश्चित ही फिल्म साहित्य के काफी निकट प्रतीत होगी। फिल्म आख्यानमूलक कला का बहुत ही रम्य और परिवर्तित रूप मालूम पडेगी।

आख्यानपरक रूप में सिनेमा और साहित्य में काफी समानता है। फिल्म में दृश्य पक्ष को प्रधानता होते हुए भी उसकी और साहित्य की आख्यानात्मक तकनीक में पर्याप्त साम्य है। श्रेष्ठ लेखक की एकमात्र विशेषता है - दृश्यात्मकता। शब्दों के माध्यम से बिम्बों को सम्प्रेरित करना, मस्तिष्क को देखने के लिए प्रेरित करना। साहित्य का कार्य मस्तिष्क के अन्त:पट पर वस्तुओं और घटनाओं के चलचित्र प्रक्षेपित करना है। अच्छी फिल्म का भी यही लक्षण है।

कुछ लोग फिल्म को साहित्य के अंतर्गत रखे जाने पर आपत्ति करते है। ऐसे लोगों के दो वर्ग है। पहले वर्ग के अंतर्गत साहित्यभिमानी वे समीक्षक है, जो फिल्म को घटिया स्तर का मनोरंजन समझते है। वे फिल्म को साहित्य में स्थान दिए जाने के प्रयत्न को साहित्य का अपमान समझते है। दूसरे वर्ग में वे समीक्षक है, जो आधुनिक साहित्यिक प्रयासों के परिप्रेक्ष्य में फिल्म पर आपत्ति करते है। वैसे फिल्म को साहित्य की एक शाखा के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि फिल्में साहित्य के अत्यधिक रूप से निकट होती है।

इतना सब कुछ होने बावजूद हिंदी साहित्य और सिनेमा के संबंध कभी उत्साहवर्धक नहीं रहे। हिंदी सिनेमा में कहानी लिखनेवाले लोगों को फिल्मी कंपनियाँ बतौर नौकर वेतन पर रखती थी। उनके द्वारा लिखी कहानी में फिल्मी फॉर्म्यूले ड़ालकर मूल कहानी को तोड़-मरोड़कर रख दिया जाता था। इस संबंध में प्रेमचंद की पहली फिल्म कहानी 'मिल मजदुर' के फिल्मकारों द्वारा बड़े पैमाने पर परिवर्तन करने पर प्रेमचंद ने कहा था - वह कहानी मेरी न होकर फिल्म निर्माताओं की हो गई है। उन्होंने मेरी कहानी की जो हत्या की है कि मेरे लिए उसे पहचानना भी मुश्किल है। यही हाल 'सेवासदन' पर बनी फिल्म के संबंध में भी था, 'यहां के ड़ायरेक्टरों की जहनीयत ही अनोखी है। बाजारे हुस्न (सेवासदन) की मिट्टी पलीद कर दी है।' जैनेन्द्रकुमार को लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा था- 'मैं जिन इरादों से आया था, उनमें एक भी पूरे होते नजर नहीं आते। ये प्रोड्यूसर जिस ढ़ंग की कहानियाँ बनाते आए है, उसकी लीक से जौ भर भी नहीं हट सकते। वलगैरिटी को ये लोग इन्टरटेनमेंट व्हॅल्यू कहते हे। अद्भूत ही में इनका विश्वास है। राजा रानी, उनके मंत्रियों के षड़यंत्र, नकली लड़ाई, बोसेबाजी यही इनके मुख्य साधन है। मैंने सामाजिक कहानियाँ लिखी है, जिन्हे शिक्षित समाज भी देखना चाहे। लेकिन उनकी फिल्म बनाते इन लोगों को संदेह होता है कि चले या न चले।

इस संबंध मे रामवृक्ष बेनिपुरी जी का अनुभव काफी महत्वपूर्ण है - 1934 की बात है। मुंबई में कॉग्रेस हो रही थी। मै भी शामिल होने गया था। मुंबई में हर जगह पोस्टर चिपके थे कि प्रेमचंद जी का 'मजदूर' अमुक तारीख से रजत पट पर आ रहा है। ललक हुई, अवश्य देखूँ कि अचानक प्रेमचंद जी से भेट हुई। मैंने 'मजदूर' की चर्चा कर दी। बोले, 'यदि तुम मेरी इज्जत करते हो, तो यह फिल्म कभी नहीं देखना। यह कहते हुए उनकी आँखे भी नम हो आई थी। कर्ज से परेशान था, यहां चला आया। अब लौट रहा हूँ, फिर इस कूचे में कदम न रखूंगा, कसम खा ली है।' आज भी उनका वह गमगीन चेहरा याद आ रहा है। और तब से इस कूचे मे आनेवाले जिन हिंदी लेखकों से भी भेट हुई, सबने प्रेमचंद जी के अनुभवों को ही दुहराया है।[1]

1952 में भगवतीचरण वर्मा ने लिखा है- मैंने फिल्मी दुनिया में छः वर्ष बिताए है। संवाद लेखक से बढ़कर मैं सिनेरियो लेखक बना ओर बाद मेरे निर्माता बनने का अवसर था। मैंने बॉम्बे टॉकिज भी इसीलिए छोड़ी कि वहां वाले कहानी को कोई महत्व देने को तैयार न थे। मेरी एक कहानी को स्वीकार करके लोगों ने उसे मुझसे इतना बदलवाया कि अंत में मै यह कह ही न सकता था कि वह मेरी कहानी है। उस कहानी के लेखक के रूप में ही नाम आया था और वह चित्र असफल रहा।[2]

हिंदी साहित्य पर फिल्में बनाने की परंपरा न चल पड़ने के पीछे और एक कारण है। सिनेमा के जन्म से ही लोग (हिंदी साहित्यकार) इस नई का विधा की ओर आकर्षित हुए वे सबकी सब असफल हो गए। आगे चलकर इसमें पड़ने की किसी ने नहीं सोची। इस फिल्म सृष्टि में असफल होकर वापस लौटने वालों में उस वक्त के नामी गिरामी स्थापित साहित्यकार थे। दूध के जले छाँछ भी फूँककर पीते है। प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, मंटो, रेणू, अश्क से लेकर राजेन्द्रसिंह बेदी, कमलेश्वर या भगवतीचरण वर्मा तक हिंदी के अधिकांश लेखक सिनेमा में पैसा कमाने के लिए गए उनका उद्देश्य व्यावसायिक था, लेकिन सिनेमा की व्यावसायिक शर्तों से वे समझौता नहीं कर पाए, साथ ही कला के धरातल पर समझौते करना भी उन्हें मंजूर नहीं हुआ, क्योंकि फॉर्म्यूलों के साँचे में ढ़ालकर उनकी मौलिक रचनाएँ कुछ से कुछ हो गई। परिणाम स्वरूप शुरू से ही साहित्यिकारों ने सिनेमा के प्रति एक उपेक्षा भाव बना लिया। यहां तक कि गम्भीर, जागरूक साहित्य कर्मियों ने इस यांत्रिक कला को कलाभिव्यक्ति के माध्यम से ज्यादा कुछ समझने का प्रयास ही नहीं किया और बहुधा उसके प्रभावों को लेकर चिंतित रहे।[3] वे आगे लिखते है, अधिकांश हिंदी के भ्रष्ट साहित्यकार रूपयों के लोभ में संवाद लिखने के लिए फँस जाते है। यह संवाद लेखन कहानी का निम्नतम भाग माना जाता है। सिनेरियो लेखक, जो अधिकांश में स्वयं निर्देशक होता है, या तो अंग्रेजी में या टूटी-फूटी हिंदी में संवादों का ढ़ांचा तैयार करता है। फिल्मों में संवाद लेखकों को पंड़ितजी या मुंशीजी के नाम से सम्बोधित करने की जो परंपरा है, उसकी तह में संवाद लेखकों का निम्न स्थान है। निर्देशक के भावों को भाषा दे देना यह संवाद लेखक का काम है। फिल्मीं दुनिया में किसी भी साहित्यकार का लेखक बनकर जाना, उसके लिए और साहित्य के लिए अपमान जनक है।[4] दूसरी बात, कुछ लागों का मानना है कि हिंदी की फिल्मे जब हिंदी प्रदेशों में बनेगी अर्थात फिल्म निर्मिति का मुंबई जैसा कोई स्थान हिंदी प्रदेश में बनेगा तो हो सकता है हिंदी साहित्य भी फिल्मों में आने लगे। पर वैसे इस तर्क में कोई दम नहीं है।

इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ. विश्वनाथ मिश्र का कथन भी उल्लेखनीय है 'उन दिनों लेखक की हैसियत एक मुंशी से अधिक नहीं थी। बगल में फाइल दबाए वह यहां से वहां भागता फिरता था। निर्माता बड़ी शान से उसे आज नहीं कल कहकर टाल देता था। लेखक की स्थिति स्टेनोग्राफर जैसी थी। निर्माता और निर्देशक उसे डिक्टेट किया करते थे ओर कभी- कभी बेचारा डांट-डपट भी खा जाता था। फिल्म निर्माण के महत्वपूर्ण व्यक्तियों में लेखक सबसे गरीब था। निर्माता जानता था कि इसकी कहानियों

---

1. सिनेमा के सौ बरस, सं. मृत्युंजय, पृ. 7
2. भारतीय सिनेसिद्धांत, अनुपम ओझा, पृ. 62
3. भारतीय सिनेसिद्धांत, अनुपम ओझा, पृ. 62
4. वही, 162

को अखबार वाले दस रूपये से अधिक नहीं देते, और प्रकाशक तो उसे समूचा ही निगल जाना चाहते है। सफल फिल्मों का श्रेय अक्सर निर्माता - निर्देशक को मिलता था। बेचारा लेखक पर्दे के पीछे ही पड़ा रहा। शोषण का शिकार लेखक फिल्म के धंधे मे पैसा तो अधिक जरूर पा रहा था, पर न वहां उसकी इज्जत थी और न ही नाम। दुर्भाग्य से यह स्थिति आज भी बदली नहीं है।फिल्मकारों की दृष्टि मे हिन्दी के उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद या भगवतीचरण वर्मा और निम्नस्तर की पुस्तकों के लेखक में कोई अन्तर नही था। यद्यपि फिल्मों की भाषा हिंदी थी, परंतु उसे उर्दू में लिखा जाता था। उर्दू लेखकों का थोडा बहुत सम्मान था, पर हिंदीवालो की कोई पूछ न थी। केवल संवाद लेखक का महत्व था।'

हिन्दी साहित्य एवं सिनेमा के संबंध में सफलता के बारे में कहा जा सकता है साहित्यिक कृतियां तो सफल नहीं हुई पर कुछ साहित्यकार जरूर सफल रहे। जो विशुद्ध सिनेलेखक थे। खास फिल्मों के लिए ही कहानियाँ लिखते थे। पहले से ही साहित्य के रूप में स्थापित कृति के उपर बनी फिल्में असफल ही रही।

पश्चिमी देशों की तुलना में हमारे यहा साहित्यिक कृतियों पर निर्मित होनेवाली फिल्मों की संख्या बहुत कम है। हिन्दी फिल्मों में इतने कम रूपांतर हुए है कि उन्हे उंगलियों पर गिनाया जा सकता है। पश्चिमी देशों में साहित्यिक कृतियों के रूपान्तरण का कारण लिखित रचना की प्रसिद्धि और उसका विशाल पाठक वर्ग होता है, जिससे आकृष्ट होकर फिल्म निर्माता उक्त कृति का रूपान्तरण करता है। हमारे यहाँ स्थिति इसके विपरीत है। शिक्षा का अभाव और औसत व्यक्ति का बौद्धिक स्तर सामान्य श्रेणी का होने के कारण फॉर्म्यूलाबद्ध फिल्मों का प्रवेश सामान्य जन के बीच साहित्य की अपेक्षा अधिक सुगमता से हो जाता है। इसलिए फिल्म निर्माता ने साहित्यिक कृतियों को उपेक्षा ही नहीं बल्कि उनका विरोध भी किया। जो साहित्यकार फिल्मों में लिखने के लिए मुंबई पहुँचे, वे सफल न हो सके। उनकी कहानियों पर बनी फिल्में पिट गई और वे निराश होकर लौट आए। फिल्म क्षेत्र में मानों यह मान लिया गया कि किसी साहित्यिक कृति पर फिल्म बनाना और अपनी व्यावसायिक मौत को बुलाना समान है। हिंदी कथा साहित्य पर आधारित किसी भी फिल्म को व्यावसायिक सफलता नहीं मिली, चाहे वह बाजारे हुस्न, सारा आकाश, धर्मपूत्र, चित्रलेखा, तीसरी कसम इनमें से कोई क्यों न हो। हीरा मोती, गबन, आँधी, रजनीगंधा आदि कुछ गिनी चुनी फिल्में ही पूरा खर्च निकाल सकी। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में फिल्म व्यवसाय के लिए साहित्यिक कृतियों में क्या आकर्षण हो सकता है।

मुंबईया फिल्मों में फिल्म व्यावसायिक दृष्टि से सफल होने के अपने कुछ फॉर्म्युले हे। जैसे सस्ता मनोरंजन, जो साहित्यिक कृतियां नही दे पाती । दूसरी बात मात्र कहानी के आधार पर कोई फिल्म हिट नहीं होती उसमें बड़े-बड़े स्टार कलाकार, श्रेष्ठ गीत-संगीत, फिल्मी मसाला, प्रेम को लेकर तरह-तरह लटके-झटके, हिंसा, मारधाड़, सेक्स एवं दिवास्वप्न की तरह अवायवीय बातें जो सामान्य जनता को पसंद आती है। और अपने यहां पर किसी भी क्षेत्र में संख्या को महत्व है स्तरीयता को नहीं, व्यावसायिकता सफलता को सफलता का आधार माना गया है न कि कलात्मकता को। ऐसे मामलो में हिंदी की साहित्य कृति क्या टिक पाएगी। फिर हिंदी साहित्य पर फिल्में क्यों नहीं बनती इस प्रश्न को क्या अर्थ रह जाता है? इस संबंध में वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्यकार विष्णु खरे कहते है, हिंदी के कथित सिनेप्रेमी बुद्धिजीवी नियमित रूप से यह मासूम, आत्मपावन, परपीडक, भडकाऊ तथा आरोपमूलक प्रश्न अन्य अपने जैसे बुद्धिजीवियों लेखकों और फिल्म समीक्षकों तथा निर्माता निर्देशकों से पूछते रहते है, हिन्दी में साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्में क्यों नहीं बनाई जाती? इस सादगी पर मर जाने की नही, मार डालने की इच्छा होती है। वे आगे लिखते है साहित्य पर फिल्म मूलत: तभी बनती है जब कम से कम कुछ लाख पाठक किसी कृति से परिचित हो और उसपर फिल्म बनाने की मांग न सिर्फ पाठकों से बल्कि सिनेउद्योग से भी उठे। आज तो प्रेमचंद के साथ भी वैसा नहीं हो पा रहा है। उनका गल्प 'फीलगुड' और बहू-बेटियों के हाथों में देने लायक जब तक बना रहेगा। जब तक कि हमारा समाज दोमुंहा और धूर्त रहेगा, तब तक उसपर अब न कोई फिल्म बनेगी और न चलेगी।

किसी भी समाज मे विभिन्न प्रकार का साहित्य मुख्यत: उसके मध्यमवर्ग द्वारा खरीदा पढा जाता है। एक सानुपातिक अनुमान के मुताबिक हिंदी भाषी मध्यवर्ग की आबादी 12 करोड है, लेकिन हिंदी में एक वर्ष में किसी भी लोकप्रिय साहित्यिक उपन्यास

एक लाख तो दूर कुछ हजार प्रतियाँ भी नही बिकतीं, जाहिर है, कहानी का हाल और कारूणिक होगा अधिकांश हिंदी भाषी मध्यवर्ग मार्क्स और मुक्तिबोध की भर्त्सनाओं से भी कही जादा कलासंस्कृति शत्रू है। विडंबना तो यह है कि सबसे ज्यादा फिल्में हिंदी में ही बनती है और देखी जाती है। जिन कृतियों पर हिंदी साहित्य इठलाता है वह गोदान, मैला आंचल, चित्रलेखा की भाषा आज कौन बोलता है? साहित्यकारों को भी मुंबई फिल्म सृष्टि को समझना होगा। 'हिंदी साहित्यकार को फिल्मजगत की बहुआयामीय समस्याओं और जटिलताओं को समझना होगा और परिहास, विसंगति, तथा समझौते की भावना बनाए हुए उनकी सीमा में काम करना सीखना होगा। विष्णु खरे आगे लिखते है, पहले लेखकों को अपनी आत्मपावन महानता को थोड़ा भूलकर यह स्वीकार करना चाहिए कि अच्छी पटकथा और सार्थक संवादों का प्रत्येक संयोजन सिनेमा के लिए 'साहित्य' का दर्जा रखता है और यह की उत्कृष्ट सिनेमा को दृश्य-श्रव्य साहित्य कहा जाना चाहिए। लेकिन कारण जो भी हो, यदि सिनेमा साहित्यिक कृतियों पर फिल्में नहीं बना पाता हो तो वह और उसका समाज उतने ही दरिद्र भी कहे जाएंगे। हिंदी भाषी समाज और हिन्दी सिनेमा का वैसा संयुक्त दलिद्दर कल्पनीय भविष्य में दूर होता दिखाई नहीं दे रहा है।'

वैसे साहित्यिक कृतियाँ फिल्मों की कहानी को अच्छी खुराक दे सकते है, मगर इन पर फिल्में बनाते समय इनके मनोरंजन पक्ष का सबसे ज्यादा ध्यान रखना पडेगा। यही एक बड़ी चूक होती है, जिसके चलते किसी कृतिपर आधारित फिल्में अक्सर अपनी लय खो देती है। प्रसिद्ध फिल्मकार महेश भट्ट इसका सारा दोष पटकथा पर मढ़ते है। वह कहते है, हम अक्सर यह भूल जाते है कि पढने और देखने में एक बड़ा फर्क होता है। कई ऐसी किताबे मुझे बहुत पठनीय और रोचक लगी, मगर उनपर फिल्म बनानें का खयाल मुझे कभी नही आया। वजह साफ है, इन पर फिल्म बनाते समय इनकी स्क्रीप्ट में मुझे बहुत परिवर्तन करना पड़ेगा। यह बात शायद उन लेखक को पसंद न आए। बहुत हद तक यह बात सही है ऐसे ढेरों विवाद है, जिनमें किसी साहित्यकार ने फिल्मकारपर उसकी कृति को कचड़ा बनाने का आरोप लगाया।[1] इस संबंध में प्रसिद्ध फिल्म निर्देशक बासू चटर्जी की बात ध्यानयोग्य हैं, 'मैं किसी भी साहित्यिक रचना की अहमियत समझता हूँ। इसलिए उसमें कोई नया मसाला डालने के बजाए, उसे सरलीकृत करने की कोशिश करता हूँ, ताकि वह आसानी से दर्शकों को ग्राह्य हो जाए। यह कोई जरूरी नही है कि उसमें नए घटनाक्रम जोडे जाए। बस, कृति की मूल बातों को ही दर्शनीय बनाने की कोशिश की जानी चाहिए, ताकि वह ज्यादा से ज्यादा आम दर्शकों को रोचक लगे।'

हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर जितने भी फिल्में बनी है, एक दो को छोडकर, सभी व्यावसायिक स्तर पर असफल रही है। परंतु कलात्मक स्तर पर समीक्षकों ने उन्हें काफी सराहा है। जैसे सारा आकाश, उसकी रोटी, आषाढ का एक दिन, माया दर्पण, सतह से उठता आदमी, बदनाम बस्ती, फिर भी, डाक बंगला, त्यागपत्र, आधे अधूरे, सद्गति, शतरंज के खिलाडी, दस्तक, 27 डाऊन इन फिल्मों ने पारंपरिक मनोरंजन प्रिय फिल्म तिलस्म को तोडा। इन फिल्मों ने फिल्म सृष्टि को हिलाकर रख दिया। कम बजट में कम ताम झाम में भी अच्छी फिल्में बनाई जा सकती है को इन फिल्मों ने दिखाया।

+++

---

1. आऊटलुक फरवरी, 2011, मासिक पत्रिका

चतुर्थ अध्याय

साहित्यिक कृतियों का पटकथा की दृष्टि से अध्ययन

साहित्यिक कृतियों पर जितनी भी फिल्में बनी है, उनको बनाते समय मूल कृति और पटकथा को केन्द्र में रखना पड़ता है। पटकथा को लिखते समय किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है इसे जान लेना महत्वपूर्ण है। जिन मूल साहित्यिक कृतियों पर पटकथाएँ बनाई गई है उन दोनों में क्या समानताएँ एवं असमानताएँ है, इसको देखना भी आवश्यक है। पटकथा लिखने की अपनी एक विधि है, एक तंत्र है उसके ऊपर इस अध्याय में ऊहापोह किया जाएगा। हिंदी में साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन करते समय पटकथा की अपनी क्या भूमिका रही है, इसे भी जानना जरूरी है। फिल्म के व्यावसायिक एवं कलात्मक रूप से सफल या असफल होने के पीछे पटकथा का स्थान महत्वपूर्ण है। यहाँ पर इस अध्याय में साहित्यिक कृतियो का पटकथा की दृष्टि से अध्ययन किया जाएगा।

साहित्यकारों के लिए सिनेलेखन जैसे अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यमों के लिए लेखन कार्य चूनौतीपूर्ण रहा है। साहित्यिक विधाओं से संपृक्ति बनाए रखने के बावजूद पटकथा लेखन थोडा अलग है। रचनात्मक प्रतिभा, बुनियादी जानकारी, अभ्यास और अनुशासन ही सफल पटकथों का राज है। निर्माता, निर्देशक, कैमरामैन, अभिनेता, संगीत दिग्दर्शन सबका आधार पटकथा ही होता है। पटकथा लेखन के संदर्भ में कहा जाता है की जितने पटकथा लेखक है, उतनी पटकथा लेखक पद्धतियाँ है। सब अपनी डफली पर अपना राग बजाते है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि बिना बुनियादी जानकारियों के पटकथा लिखी जा सकती है। कम से कम ये जानना तो आवश्यक ही है कि पटकथा का उपयोग निर्माता निर्देशक से लेकर प्रोडक्शन कंट्रोलर तक करते हैं। पर वे सब पटकथा में अपनी काम की बात खोजते है। जैसे कैमरामैन दृश्य विशेष की शूटिंग से पहले पटकथा में यह देखता है की दृश्य किसी कमरे के अंदर का है या बाहर का और दृश्य रात का है या दिन का। कैमरामेन की तरह ही फिल्म के निर्माण पक्ष से संबंधित सभी तकनिशीयनों के लिए पटकथा सबसे प्रामाणिक दस्तावेज होता है, जिसमें उन्हें निर्देशन मिलता है।

पटकथा लेखन कुछ अर्थों में एक प्रकार का तकनीकी लेखन है, जो कहानी, उपन्यास, नाटक से गहरा रिश्ता बनाए रखने के बावजूद उनसे अलग ही नहीं कुछ तकनीकी भी है। बौद्धिकता, विचारों, संवेदनाओं, प्रतिक्रियाओं की 'विजुअलाइज' कर देने वाला हो सफल पटकथा लेखक होता है।[1]

कमलेश्वर पटकथा और अपनी कृतियों के फिल्मांकन के बारे में कहते है - 'सारा आकाश' को लेकर कभी-कभी राजेन्द्र यादव कंट्रोवर्सी खड़ी कर देते है। निश्चित रूप से जो संवाद है वे बहुत कुछ राजेन्द्र के उपन्यास से लिए गए है और कुछ जोडे भी गए है। वे आगे कहते है, व्यावसायिक निर्देशकों के साथ जब आप बैठते हैं तो पटकथा की सही पहचान वहाँ पर होती है। कला फिल्मों में फिर भी थोडी- बहूत लिबर्टी ले लेते है। लेकिन व्यावसायिक फिल्मों में साँस लेने की भी जगह नहीं होती। व्यावसायिक फिल्में लिखते समय यह ध्यान रखना पडता है कि पटकथा अपने नेचर की चली जाए और दर्शक बँधा रह जाए। इस संदर्भ में प्रेमचंद के 'गबन' पर इसी नाम से बनी फिल्म को देख सकते हैं। 'गबन' उपन्यास का निष्ठापूर्वक किया

---

1. टेलीविजन लेखन, असगर वजाहत, प्रभात रंजन, पृ. 07

गया फिल्मांकन है। कथा में कहीं कुछ भी परिवर्तन नहीं किया गया है। इतना अवश्य किया गया है कि फिल्म की निजी विशेषताओं और सीमित अवधि को ध्यान में रखकर घटनाएँ बहुत कम कर दी गई है। जहाँ तक पात्रों का संबंध है तो पात्रों या चरित्रों के महत्व या संख्या को न तो कम किया गया है। और न बढ़ाया गया है यह बात अलग है कि फिल्म मे उनकी आवश्यकता के अनुरूप ही उनका कम या अधिक प्रयोग किया गया है। फिल्म इतनी सशक्त इसलिए बन पड़ी है कि उपन्यास से घटनाओं का चयन करते समय पटकथा लेखकों ने बहुत सूझ-बुझ से काम किया है। उनका यह पटकथा कौशल इस बात में भी दिखलाई पडता है कि उदाहरणार्थ फिल्म में रत्ना की भूमिका सीमित कर दी है, जोहरा केवल एक दृश्य में नर्तकी के रूप में पेश की गई है जबकि 'गबन' के सभी पाठक जानते है कि उपन्यास के अंतिम अध्याय को भी छोड़ दिया गया है। इस प्रकार निर्ममतापूर्वक फिल्म के लिए अनावश्य प्रसंगों को निकालकर पटकथाकारो ने फिल्म को बहुत सुगठित एवं संतुलित रूप प्रदान कर दिया है जिसमें उपन्यास की आत्मा तो अक्षुण्ण रही है लेकिन अनावश्यक विस्तार नहीं रहा है।

'सूरज का सातवाँ घोडा' हिंदी में एक नए शिल्प को लेकर आया जब इसे लेकर फिल्म बनाने की बात चली तो इसकी पटकथा एक कठिन समस्या थी। परंतु इतने जटिल उपन्यास को इतने सहज भाव से पटकथा मे गूँथा गया कि फिल्म अच्छी बन पड़ी।

रेणु जी की कहानी 'तीसरी कसम अर्थात मारे गए गुलफाम' को पढ़ने के बाद जब हम फिल्म देखते है तो पाएँगे कि कहानी में दिए गए छोटे-से-छोटे संकेत का पटकथा में फिल्म को भरापूरा बनाने की दृष्टि से भरपूर उपयोग किया गया है।

साहित्यिक कृतियों पर पटकथा लिखने के संबंध में प्रसिद्ध लेखिका मन्नू भंडारी लिखती है, 'साहित्यिक कृतियों पर पटकथा लिखने की अपनी एक सीमा होती है और संकट भी। सीमा यह कि आपको उस कहानी के दायरे में बँधकर ही काम करना होता है यानी कि आप कहानी के केन्द्रीय भाव .....प्रमुख चरित्रों और स्थितियों के साथ बहुत अधिक छूट नहीं ले सकते क्योंकि बार बार यह एहसास बना रहता है कि कहानी का असली रचयिता कोई और है जो एक सीमा के बाद अपनी रचना के साथ की गई छेड़ छाड़ पर या ले गई छूट (लिबर्टी) पर अपनी आपत्ति दर्ज करा सकता है चाहे तो संकट भी। यह दूसरी बात है कि प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों की ऐसी की तैसी करते हुए धड़ल्ले से केवल फिल्में ही नहीं, धारावाहिक भी बने है। फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' और सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' इसके ज्वलंत उदाहरण है। पर लेखक या उनके पाठकों ने कभी-कभी मौखिक या लिखित आपत्ति भले ही दर्ज कराई हो, संकट तो (एकाध अपवाद को छोड़कर) आज तक किसी ने पैदा नहीं किया।'[1]

किसी कृतिपर पटकथा लिखते समय जिस प्रकार उसमें किए बदलावों से रूपान्तरण में कमजोरी हो सकती है, पर कभी-कभी अगर यह परिवर्तन नहीं किया तो फिल्म असफल होने के पूरे आसार होते है। इसलिए कभी-कभी पटकथा में परिवर्तन फायदे मन्द साबित होते है। जैसे रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' पर बना धारावाहिक निश्चित रूप से इस कोटि में आता है। इस धारावाहिक को मूल कृति नहीं पटकथा ने सफलता दिलाई।

साहित्यिक कृति और पटकथा में सबसे बड़ा और प्रमुख परिवर्तन तो होता है प्रारूप का। साहित्यिक कृति को तो पूरी छूट होती है वह अपनी किसी भी विधाया शैली को अपनाएँ। वह चाहे तो अपनी टिप्पणियों और व्याख्याओं के साथ वर्णनात्मक शैली में घटनाओं के ब्यौरे प्रस्तुत कर सकता है और चाहे तो मात्र संवादों में। उत्तम पुरूष में लिखे या अन्य पुरूष में ...ड़ायरी फॉर्म में लिखे या पत्रों कें रूप में.... तरह तरह के प्रयोग करने की उसे पूरी छूट होती है पर पटकथा-लेखक को तो सारी कहानी को दृश्यों और संवादों में ढ़ालकर ही प्रस्तुत करना होता हे। साहित्यिक कृति में लेखक जितनी देर तक और जहाँ-जहाँ चाहे अपनी उपस्थिति दर्ज करा सकता है पर पटकथा में लेखक को तो बिल्कुल ही अनुपस्थित रहना पड़ता है। यही कारण है कि अपनी कृतियों पर लिखी पटकथा और उस पर बनी फिल्म में साहित्यकार इतना अंतर पाता है कि वह फिल्म बिल्कुल भी अपनी

---

1. कथा-पटकथा, मन्नू भंडारी, पृ. 12

नहीं लगती। पटकथा एक ऐसा माध्यम है जो मूल साहित्यिक कृति को बदल कर रख देता है। यह बात प्रेमचंद के 'गोदान', 'सेवासदन', भगवतीचरण वर्मा के पुनर्निर्मित 'चित्रलेखा', रेणु जी के 'मैला आँचल', जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' आदि ऐसी अनेक कृतियों के बारे में देख चुके है। पटकथा की दृष्टि से साहित्यिक कृतियों का अध्ययन इसी परिप्रेक्ष्य मे महत्वपूर्ण हो जाता है।

फिल्म एक स्वतंत्र कला माध्यम है। फिल्मकार अपनी फिल्म में साहित्यिक कृति का मात्र रूपांतरण ही नहीं करता वरन् उसका पुनसृजन करके एक स्वतंत्र कला - कृति की रचना करता है इसलिए उसका मूल्यांकन कृति के संदर्भ में न करके, फिल्म कला की कसौटी पर ही किया जाना चाहिए, ऐसा भी एक मत प्रवाह है। अगर ऐसा है तो फिल्म के लिए स्वतंत्र कहानी रचना आवश्यक है, वहाँ पर साहित्यिक कृति को लेना आवश्यक नहीं।

किसी फिल्म के लिए किसी साहित्यिक कृति को चुनने के बाद उसका अगला पड़ाव होता है पटकथा लेखन। और अक्सर मूल कृति लेखक और पटकथा लेखक अलग-अलग होते है। क्योंकि मौलिक सृजन साहित्य की तो पटकथा लेखन फिल्म कला की विधा है। होना तो ऐसा चाहिए कि जिस कृति पर पटकथा लिखी जाने वाली है उस कृति के लेखक को पटकथा लेखन में सम्मिलित किया जाना चाहिए मात्र सिनेमा के लिए लिखने वाले सिने लेखकों के बारे में ही यह बात लागु पड़ती है। जैसे पं. मुखराम शर्मा, कमलेश्वर, गुलजार, राजेन्द्रसिंह बेदी आदि चुनिंदा ऐसे लेखक है जो मूल कृति के साथ पटकथा भी लिख सके है। नहीं तो लेखक की साहित्यिक कृति को तो फिल्म के लिए लिया जाता है, परंतु लेखक को कभी फिल्म प्रक्रिया में आने नहीं देते।

भारतीय फिल्म व्यवसाय जिस प्रकार की कहानियों की मांग करता है उस प्रकार की कहानियाँ हिंदी साहित्य में बहुत कम मिलेगी। अगर एखाद साहित्यिक कृति मिले भी तो फिल्म- बनते बनते पटकथा के स्तर पर इतने बदलाव हो जाते है कि मूल कृति का मन्तव्य नाममात्र को ही रह जाता है। उसके ऊपर वही एकमात्र उपाय है कि कहानी ही फिल्मों के लिए लिखे भले ही गैर साहित्यिक क्यों न हो। बहर हाल, साहित्यिक कृति और पटकथा का आपसी संबंध हमेशा से विवाद के घेरे में रहा है और रहेगा। इसका सहज-स्वीकृत सामान्य समाधान ढूँढ़ा नहीं जा सकता क्योंकि प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों पर विवाद के नये-नये पक्ष सामने आते रहे है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण प्रेमचंद की 'शतरंज के खिलाड़ी' पर इसी नाम से बनी सत्यजीत रे की फिल्म...जिसमें उन्होंने बाकी सारी फिल्म को तो जस का तस रखा पर कहानी का अन्त ही बदल दिया।

वैसे कथा विचार (स्टोरी आयड़िया) के आधार पर पटकथा तैयार करने में पटकथा को अपने हिसाब से कथा विकसित करने की कुछ छूट होती है। 'कुछ' इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि पटकथा तो मूल कथा या कथा विचार से बँधी ही होती है, लेकिन साहित्यिक कृतियों पर 'पटकथा' तैयार करना अधिक जटिल तथा चुनौति पूर्ण होता है। प्रसिद्ध फिल्मकार एलेन रेनसे तो इसे बासी कढ़ी को उबालकर खाने जैसा काम मानते थे। उनका मानना था कि 'एक कृति का एक कला-रूप में आने के बाद रचना का हेतु पूरा हो जाता है और कोई भी रचना दूसरे कला रूप में पूरी तरह पुन:सृजित नहीं की जा सकती, क्योंकि जितनी बार उसका कला-रूप बदलेगा उतनी बार उसका पुन:सृजन होगा और फिर नए कला रूप के औजार उसे पुन: गढ़ेंगे। उसमें कुछ जुड़ेगा, कुछ घटेगा।'[1]

इसमें और एक पक्ष है। साहित्यिक कृति जिस पर की फिल्म बनी है, पाठक अगर उस फिल्म को देखने जाएगा तो वह कृति और फिल्म दोनों में तुलना जरूर करेगा और कृति की एक एक घटना को फिल्म में देखना चाहेगा। चूँकि साहित्यिक कृति और फिल्म दोनों अलग- अलग कला माध्यम होने के कारण परिवर्तन तो होगा। और यही परिवर्तन विवाद का कारण बन जाता है।

आंद्रे बेजिन का मत कुछ अलग था। वे मानते थे कि हर कला-रूप के अलग और सीमित रसिक होते हैं। यदि कोई साहित्यिक कृति साहित्यिक अभिरूचि के पाठकों को व्यापक ढ़ंग से प्रभावित करती है तो उसे फिल्म में ढ़ालकर, फिल्म के दर्शकों तक ले-जाकर रचना को व्यापकता प्रदान करना बुरी बात नहीं है। पुनर्रचना अथवा सृजन में ध्यान रखनेवाली बात यह

---

1. पटकथा का सच, प्रभुनाथ सिंह, 'आजमी', पृ. 12

है कि मूल पाठ के विचार नई विधा में रची गई रचना में रूपान्तरित होकर पहुँचे। यहाँ पटकथा और फिल्मकार के सामूहिक विवेक पर बहुत कुछ निर्भर करता है। प्रस्तावित कृति का कौनसा मूल विचार पटकथाकार को कितना प्रभावित करता है-यह नई पुनर्रचित रचना को बहुत प्रभावित करता है। उसके विचार मूल कृति के सर्वस्वीकृत विचार से जितना मिलते है, पुन:सृजित रचना भी उतनी सफल या विफल होती है।

दृश्य-श्रव्य माध्यम में साहित्यिक कृति की कहानी, पटकथा तथा संवाद लेखन अलग-अलग प्रकार मान लिए गए है। कुछ लेखक दृश्य-श्रव्य माध्यम की कहानी अच्छी लिख सकते है, लेकिन पटकथा लेखन में विफल हो जाते है। कुछ लेखक पटकथा में माहिर होते है लेकिन तभी जब उन्हें एक अच्छी कहानी दे दी जाए। कुछ पटकथाकार बुरी कहानी को भी अपनी प्रतिभा से सशक्त पटकथा में बदल देते है। यानी पटकथा के स्तर पर वे कहानी को सुधार लेते है, कई बार अविश्वसनीय ढंग से भी।

कहानी को पहले निर्माता-निर्देशक और पटकथाकार ही पढ़ता-सुनता है। बाकी किसी को कच्ची कहानी पर गौर करने की जरूरत नहीं होती। इसी लिखित स्वरूप पर गौर कर तीनों भी समझ जाते है कि फिल्म की अंतिम कहानी यानी पटकथा और पूरी फिल्म कैसी होगी।

दर्शकों को फिल्म की जो कहानी पता चलती है, वह पटकथा के जरिए ही। इस दृष्टिकोण से भी सुव्यवस्थित पटकथा लेखन का महत्व होता है। दृश्य-श्रव्य माध्यम में कहानी, पटकथा तथा संवाद एक ही विधा के तीन अंग है।[1] इसी कहानी के विभिन्न रूपों को पढ़ने-सुनने पर भी कई पटकथाकार या निर्देशक अंदाजा लगा लेते हैं कि कहानी ही अन्ततोगत्वा पटकथा और पूरी फिल्म का स्वरूप कैसा होगा। अत: कई बार आधी-अधूरी कहानी को भी मान्यता मिल जाती है।

जब एक ही लेखक कृति का पूर्ण लेखन करता है, यानी कथा, पटकथा, संवाद इकट्ठे लिखता है तो तारतम्य होता है। कृति एक दिशा में बढ़ती रहती है। लेखक को पता होता है कि शनै:शनै: कहानी कैसा रूप ले रही है। कई बार वह कहानी में शामिल न हो पाई बातें पटकथा में शामिल कर लेता है। पटकथा यानी दृश्य लिखते समय जब उसे महसूस होता है कि इस प्रसंग के लिए उसके पास सशक्त संवाद है, तो वह दृश्य के किसी अंग को सीमित करते हुए संवाद को आगे बढ़ा देगा। इसी प्रकार वह उल्टा रास्ता भी अपना सकता है। प्रसंग के मद्देनजर एक भी संवाद नहीं लिखेगा...बस, दृश्य को समग्र रूप में मुखर बना देगा। यह संवादहीनता जिसे आप मौन भी कह सकते है, ज्यादा प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है।

कथा, पटकथा तथा संवाद में कई बार लेखक को इकट्ठे सूझता रहता है और वह एकमुश्त लेखन करता है। ये तीनों अंग एक दूसरे में फँसे होते है, खास कर कथा और पटकथा... और पटकथा और संवाद। इन्हें अलग करना एक कृत्रिम तरीका होगा। यह भी देखा गया है कि पटकथाकार से कह दिया जाता है कि उसे कहानी सौंप दी जाएगी, उसका काम केवल पटकथा लिखना है। प्रत्यक्ष रूप में होता यह है की उसे एक-दो पैराग्राफ की कोई कल्पना थमा दी जाती है। अब उसे कहानी और पटकथा दोनो पर काम करना होता है।

साहित्यकार पटकथा लिखने की प्रतिभा और अनुभव ही न रखे, तो क्या जबरन उससे पटकथा लिखवाई जाएगी? अगर ऐसा किया जाए तो उस पटकथा का कोई माने होगा? कुछ साहित्यकारों के संवादों मे वह गंभीरता, माद्दे को साफ प्रकट करने की कला, अनुभव की गहराई नहीं होती... लेकिन वे पटकथा या फिर कहानी अच्छी लिख लेते है। अत: जो जिस कला में माहिर है, उसे उसी कला को अंजाम देने का जिम्मा सौंपा जाना बेहतर है।

मूल साहित्यिक कृति और उसकी पटकथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण कुछ पुस्तकें है, जैसे राजेन्द्र यादव के 'सारा आकाश' पर इसी नाम से राजेन्द्र यादव और बासु चटर्जी की 'सारा आकाश पटकथा', मन्नू भंडारी के 'यही सच है' पर मन्नू भंडारी और बासु चटर्जी की 'रजनीगंधा पटकथा', इसी तरह कमलेश्वर के 'काली आँधी' उपन्यास पर गुलजार द्वारा लिखी पटकथा की पुस्तक 'आँधी' महत्त्वपूर्ण है। इन मूल कृतियों और उसपर पुस्तक रूप में छपी पटकथाओं का अध्ययन काफी महत्त्वपूर्ण है।

+++

1. पटकथा कैसे लिखे, राजेन्द्र पाण्डे पृ. 148

पंचम अध्याय

साहित्यिक कृतियों का प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अध्ययन

किसी फिल्म की सफलता का आधार, कहानी, पटकथा एवं प्रस्तुतीकरण होता है। पिछले अध्याय में हमने पटकथा का अध्ययन किया है। इसमें फिल्म के प्रस्तुतीकरण संबधित बातों को देखेंगे। कई ऐसे फिल्में है जो हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर बनी है, जिसे हम तीसरे अध्याय में देख चुके है, वे प्रस्तुतीकरण के कारण सफल हुई या तो असफल। किसी भी साहित्यिक कृति का फिल्मों में रूपान्तरण करते समय काफी बदलाव करने पड़ते है, वे बदलाव कभी निर्देशक, कभी पटकथाकार, कभी निर्माता, कभी दर्शकों की माँग तो कभी व्यावसायिक दबाव में करने पड़ते है। यहाँ पर उन फिल्मों को देखेंगे जो हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर बनी है और प्रस्तुकरण के परिप्रेक्ष्य में वे कहाँ तक सफल रही और कहाँ तक असफल।

हिंदी साहित्य की किसी कृति पर फिल्म बनने का पहला सौभाग्य कथा सम्राट प्रेमचंद को ही मिला। उनके द्वारा रचित 'सेवासदन' नामक उपन्यास पर महालक्ष्मी सिनेटोन ने 1934 में इसी नाम से फिल्म को बनाया था। इसके निर्देशक थे नानुभाई वकील। अपनी कृति को फिल्म के रूप में प्रस्तुत करने की प्रेमचंद की भावना कुछ इस प्रकार थी-'यदि मेरे इस उपन्यास द्वारा समाज का कुछ भी उपकार हो सका तो मैं अपने आप को कृतार्थ मानुँगा।'[1] वेश्यावृत्ति की रागरया को केंद्र में रखकर इसकी रचना की गई थी। परंतु फिल्म को, जिसका एक और नाम 'बाजारे हुस्न' भी था, जब प्रदर्शित किया तो उसमें अनेक नाच और गाने ड़ाल दिए। मूल कथा के उद्देश्य के साथ ही प्रस्तुत करते समय उसमें हिंदी फिल्मों की व्यावसायिकता के दबाव में काफी परिवर्तन हुए। अपनी साहित्यिक कृति के फिल्म रूप में प्रस्तुत होते समय हो रहे बदलावों से खिन्न होकर जैनेन्द्र को लिखा था, 'फिल्म में ड़ायरेक्टर ही सब कुछ है। लेखक कलम का बादशाह क्यों न हो, यहाँ ड़ायरेक्टर की अमलदारी है और उसके राज्य में उसकी हुकूमत चल नहीं सकती। हुकूमत माने तभी वह रह सकता है। वह यह कहने का साहस नहीं रखता कि, मै जनरूचि को जानता हूँ। इसके विरूद्ध ड़ायरेक्टर जोर से कहता है, आप नहीं जानते मैं जानता हूँ, जनता क्या चाहती है और हम जनता से सलाह करने नहीं आए है। हमने व्यवसाय खोला है, धन कमाना हमारी गरज है। जो चीज जनता मांगेगी,वह हम देंगे... फिल्म में मेरे मन को संतोष नहीं मिला... मैं जो प्लान सोचता हूँ उसमें आदर्शवाद घुस आता है और कहा जाता है उसमें एण्टरटेनमेंट वैल्यू नहीं होती। इसे मै स्वीकार करता हूँ।'

मूल कृति का ठीक से फिल्मांतरण न कर पाने की स्थिति में प्रेमचंद की काफी रचनाएँ असफलता की भेंट चढ़ गई। जैसे 'औरत की फितरत' अथवा 'त्रियाचरित्र' पर बनी स्वामी, 'रंगभूमी' पर बनी रंगभूमी, 'गोदान' पर बनी गोदान आदि। पर दूसरी तरफ कुछ फिल्में काफी सफल रही जैसे गबन, हीरामोती, सद्गति, शतरंज के खिलाड़ी आदि। गबन में मंजे हुए कलाकार, नाटकीयता,अनुभवी निर्देशन, चुस्त संवाद आदि वे सभी बातें थी जो फिल्म को सफल बना दें। 'दो बैलों की कथा' जैसी छोटी सी कहानी पर हीरा-मोती एक सफल प्रस्तुतीवाली फिल्म है। निर्देशक कृष्ण चोपड़ा ने बैल जैसे मूक प्राणियों द्वारा अपने मन्तव्य को व्यक्त करने की कला को विभिन्न कोणों द्वारा लिए गए दृश्यांश, छाया और प्रकाश संयोजन और सान्निकट दृश्यांश के मनोभवों को दर्शाने का प्रयत्न किया है। कृष्ण चोपड़ा के सामने समस्या यह थी कि बैल संवाद नहीं बोल सकते थे और यदि

---

1. 8 मई, 1934 को प्रेमचंद द्वारा जैनेंद्र कुमार को लिखा पत्र, माधुरी अक्तुबर, 1964

बैल संवाद बोलते जैसे कि प्रेमचंद की कहानी में बोलते है, तो फिल्म यथार्थवादी स्तर से गिर जाती और उसका सारा आकर्षण समाप्त हो जाता। अधिकाधिक दृश्यात्मकता एवं क्रियाशीलता द्वारा कहानी को आगे बढ़ाया है। श्रवण के स्थान पर बिंबो के उपयोग द्वारा कहानी कहना सिनेमा की मौलिक विशेषता है,जिसका उपयोग कृष्ण चोपड़ा ने किया है। बैलों को अपने सहज प्राकृतिक रूप में चित्रित कर कहानी को रोचक और अर्थपूर्ण बनाया है।

प्रेमचंद की ही नहीं हिंदी की भी एक श्रेष्ठ कृति 'गोदान' पर बनी फिल्म प्रभावी प्रस्तुतीकरण के मामले में बहुत ही फिसड्डी साबित हुई। इसके पीछे दो कारण हो सकते है- एक तो स्वयं उपन्यास में ही रूपान्तरण की अनुकूलता का अभाव और दूसरे निर्देशक की अक्षमता। निर्देशक श्री त्रिलोक जेटली उपन्यास की आत्मा को पकड़ नहीं सके। गोदान बहुत ही सरल उपन्यास है। उन्होंने इसे साहित्यिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द है। इन शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग जेटली ने अपनी फिल्म में किया है। फिल्म मूलत: दृश्य माध्यम है। जो बात फिल्म में दृश्य के माध्यम से कही जाती है, उसे शब्द के माध्यम से कहना सिनेमा की असफलता का कारण है। दूसरी बात इसमें व्यावसायिक फिल्मों की बातें आ गई है। जैसे गीत- संगीत जो अनावश्यक सा लगता है। गोदान के होरी को अभिनेता राजकुमार ठीक ढ़ंग से प्रस्तुत नहीं कर सके है। गोबर की भूमिका में कॉमेड़ियन महमुद और उनकी प्रेमिका के रूप में शुभा खोटे दोनों कुछ जँचे नही। 'गोदान' उपन्यास को लेकर सामान्य भारतीय जनमानस जो छबि थी ठीक उसके विपरीत व्यावसायिकता से लबरेज गोदान फिल्म थी।

विश्वप्रसिद्ध फिल्म निर्माता-निर्देशक एवं बंगला की साहित्यिक कृतियों पर सफल फिल्में बनानेवाले सत्यजीत रे ने प्रेमचंद की कलाकृतियों पर दो सफल फिल्मों का निर्माण किया सद्‌गति एवं शतरंज के खिलाड़ी। दोनों कृतियाँ साहित्य में जिस प्रकार प्रतिष्ठित थी उसी प्रकार फिल्में भी प्रतिष्ठित हुई। सद्‌गति टेलिफिल्म थी, जो मात्र पचास मिनट की थी, पर अपने विषय एवं प्रस्तुतीकरण के कारण काफी चर्चित रही। शतरंज के खिलाड़ी खास सिनेमा घरों के लिए बनाई थी।

प्रस्तुतीकरण में असफल हुई फिल्म के रूप में 'उराने कहा था' को देखा जा सकता है। मूल कहानी हिंदी साहित्य में मील का पत्थर साबित हुई थी पर उसके ऊपर बनी फिल्म एकदम असफल। प्रस्तुतीकरण में मूल कहानी में इतने अधिक बदलाव किए थे कि पूछिए मत। मूल कहानी के पात्रों के, गांव एवं रहन-सहन में भी परिवर्तन किए गए थे। निर्देशक मोनी भट्टाचार्य ने लहना सिंह की दाढ़ी - मूंछ निकालकर उसे नन्दू बनाया। साथही उसे एक निठल्ले और आवारा लड़के के रूप में चित्रित किया। गुलेरी जी के अमर चरित्र लहनासिंह को नष्ट करके अनेक मसालेदार प्रसंग इस फिल्म में ड़ाले गए थे। गलत ढ़ंग की प्रस्तुति के कारण यह फिल्म कहानी अच्छी होकर भी असफल ही रही।

भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' पर इसी नाम से दो फिल्में 1941 और 1965 में आई। एक श्वेत-शाम तो दूसरी रंगीन। दोनों के दिग्दर्शक एक ही - केदार शर्मा। पहली फिल्म एकदम सफल तो दूसरी असफल। प्रस्तुतीकरण पक्ष यहां पर स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है। पहली फिल्म उपन्यास के अनुरूप सही रूपान्तरण साबित हुई। दूसरी व्यावसायिक लटके- झटके, तड़क-भड़क, पात्रों के गलत चयन के कारण असफल हुई। जिस कुमारगिरि को चित्रलेखा ने अपने जीवन के प्रधान अभिनेता की संज्ञा दी थी, केदार शर्मा ने उसे सामान्य ढ़ोंगी और कामुक साधु के रूप में चित्रित किया। गलत पात्रों का चुनाव भी इस फिल्म के स्वरूप को विकृत करने में काफी सीमातक उत्तरदायी है। कहां युवक ब्रम्हचारी योगिराज कुमारगिरि का तेजोदीप्त मुखमण्ड़ल और कहां अभिनेता अशोककुमार का झुर्रियोंवाला चेहरा और प्रौढ़ शरीर, कहां सौन्दर्य और मादकता से भरपूर चंचलगति नर्तकी चित्रलेखा की देहयष्ठि और कहां नृत्यकला से शून्य प्रौढ़ता की और उन्मुख मीनाकुमारी की मांसल देह। कहां आश्रम में शिक्षाप्राप्त शिष्ट विनम्र और संकोची श्वेतांक और कहां महमुद का सुन्दरियों के बीच कॉमेड़ियन का स्तरहीन हास्य। फिल्म अनेक विसंगतियों से भरी पड़ी थी। रूपान्तरणकार ने फिल्म में परिवर्तन करने के अपने अधिकार का घटना, पात्र, संवाद, रूप, सज्जा, कथ्य आदि में जहां भी उपयोग किया है, वहीं प्रस्तुतीकरण वाला अंश पूरी तरह बिगड़ गया है। बी. आर. चोपड़ा द्वारा प्रस्तूत 'धर्मपुत्र' का भी यही हाल हुआ।

फणीश्वरनाथ रेणु की लघुकथा 'तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम' पर बनी तीसरी कसम फिल्म भी प्रस्तुतीकरण

में विशेष कमाल नहीं दिखा पाई। 'लघु कहानी को इस फिल्म में कुछ लंबा ही खींचा गया था। अधिकांश गीत, नृत्य चिपकाए हुए लगते थे। नर्तकी का गाड़ीवान की ओर झुकाव और उसके लांछित व्यावसाय के कारण जो अंतरद्वन्द्व उसके मन में उठ खड़ा होता है उसका चित्रण सिनेभाषा में नहीं शब्दों के माध्यम से किया गया है। यही वह स्थल था जहां सिनेनिर्देशक अपने सिनेशिल्प का भरपूर उपयोग नर्तकी के आभ्यंतर चित्रण में कर सकता था। परंतु वह यहां एक कुशल फिल्मकार प्रमाणित नहीं हो सका।[1]

साहित्यिक कृतियों के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से 'सारा आकाश' एक आदर्श उदाहरण है। यह पहली रचना है जिसमें मूल कृति को बिना किसी जोड़-तोड़ के अपने वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। 'सारा आकाश' उपन्यास और फिल्म में इतना अधिक साम्य है कि निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है कि अमुक विशेषता फिल्म की है या उपन्यास की, यह अमुक दृश्य फिल्म का है उपन्यास का। उपन्यास की दृष्टि के अनुरूप ही फिल्म में निम्नमध्य वर्ग के एक परिवार का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण किया गया है। उस परिवार और घर की छोटी - छोटी बातों, वस्तुओ का बड़ा ही सूक्ष्म और विस्तृत चित्रण किया गया है। इसका आधार है- स्टूड़ियों के बाहर फिल्मांकन द्वारा जीवन का वास्तविक अंकन। इस फिल्म की अधिकांश शूटिंग आगरा में राजेन्द्र यादव के मकान में की गई, जो मध्यमवर्गीय घरों का प्रतिनिधित्व करता है। नकली सेट की कृत्रिमता को निर्देशक बासू चटर्जी बचा गए है। निर्देशक शब्दों के स्थान पर अधिकाधिक दृश्यबिम्बों का प्रयोग कर फिल्म को सिनेमायी रूप देने का प्रयास किया है। फ्लैश बैक और अन्त: संवादों के कुशल संयोजन द्वारा उक्त स्थलों को बड़ी ही कुशलतापूर्वक दर्शाया है। प्रभावी पार्श्वसंगीत ने तनावपूर्ण स्थितियों को अधिक प्रभावशाली बनाने में पर्याप्त योगदान दिया है। संक्षेप में सारा आकाश फिल्म उपन्यास की अपेक्षा अधिक आकर्षक, रोचक और प्रभावपूर्ण है।

कमलेश्वर के 'तलाश' नामक कहानी पर बनी 'फिर भी' प्रस्तुतीकरण में अच्छी बन पड़ी है। निर्देशक शिवेन्द्र सिन्हा की यह फिल्म रंगीन है और ग्लैमर युक्त भी। इसमें अनेक सुरम्य स्थल है और मुंबई का चित्रण भी। फिल्म में स्वप्न के माध्यम से सम्भोग दृश्य दर्शाया गया है, जो निगेटिव्ह प्रिन्ट में होते हुए भी काफी उत्तेजक है। अनेक स्थलों पर फ्रीजशॉट के द्वारा गति को रोक कर निर्देशक ने विशेष प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। 'ड़ाक बंगला' कमलेश्वर के ही कहानी पर आधारित थी। निर्देशक गिरीश रंजन ने आधुनिक मनुष्य की संश्लिष्ट चेतना को दृश्य बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। निर्देशक ने एक लयबद्ध रूप देने का प्रयत्न किया है। पृष्ठभूमि का संगीत और लोरी का दृश्यांकन अत्यंत सुंदर है। कमलेश्वर के ही 'बदनाम बस्ती' नामक उपन्यास पर इसी नाम से फिल्म बनी थी। फिल्म की कहानी में दृश्यात्मकता के पर्याप्त अवसर है और निर्देशक प्रेम कपूर ने उनका सही उपयोग किया है। फिल्म का समग्र स्वरूप यथार्थवादी है और उपेक्षित वर्ग का चित्रण इसमें सफलता पूर्वक किया गया है। फिल्मकार ने बड़ी ईमानदारी और निष्ठा से मूल कृति को रूपान्तरित किया है। उसे सिनेभाषा का अच्छा ज्ञान है और प्रभावशाली पार्श्वसंगीत, लयबद्ध संकलन और सुमधुर गीतों का उसने सार्थक प्रयोग किया है। कुल मिलाकर 'बदनाम बस्ती' फिल्म का एक अच्छा प्रस्तुतीकरण है।

कमलेश्वर के उपन्यास 'आँधी' पर गुलजार द्वारा बनाई फिल्म आँधी काफी चर्चित रही। इसके प्रस्तुतीकरण को लेकर काफी उथल पुथल हुई। मूल कृति में प्रस्तुतीकरण के समय काफी बदलाव किए, इस फिल्म में राजनीति में महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले स्त्री का चित्रण किया गया है, जो उस वक्त के आपात्काल में इंदिरा गांधी से मिलता-जुलता था। इस फिल्म को देखकर खुश होते हुए इंदिरा जी ने दूरदर्शन में कमलेश्वर को एक ऊँचे ओहदे पर बिठा दिया था। प्रस्तुतीकरण के समय इस फिल्म में कृति के मुकाबले काफी परिवर्तन किए गए थे। इसकी पटकथा एवं संवाद किसने लिखे इसको लेकर गुलजार और कमलेश्वर के बीच विवाद होता रहा, जो अंत तक किसी सच के मुकाम तक नहीं पहुँचा। जो भी हो फिल्म काफी चर्चा में रही। अपने कर्णमधुर गीत- संगीत के कारण यह फिल्म हमेशा याद की जाएगी।

---

1. हिंदी चलचित्रों में साहित्यिक उपादान, विश्वनाथ मिश्र

प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया में सबसे अधिक नाविन्यता, प्रयोगात्मकता निर्देशक मणि कौल और कुमार साहानी में पाई जाती है। मोहन राकेश की लघुकथा 'उसकी रोटी' पर इसी नाम से उन्होंने फिल्म बनाई थी। इसमें मणि कौल ने सिने शिल्प की तकनीक का उपयोग किया है। जो सर्वथा मौलिक और दर्शक जिसके अभ्यस्त नहीं है ऐसा था। 'उसकी रोटी' का कथावृत्त अस्पष्ट है। फिल्म में यह स्पष्ट नहीं होता कि कौन से अंश वास्तविक रूप में घटित हो रहे है, और कौन से प्रत्यावलोकन में रखे गए है, या कौन से चिन्तन के रूप में है? कथा का क्रम भंग कर उसे अनेक खण्डों में विभक्त करके रखा गया है, जिससे कहानी का आरम्भ और अन्त स्पष्ट नहीं होता। मंथर गति इस फिल्म की प्रस्तुतीकरण की दूसरी विशेषता है। जहां अनवरत प्रतीक्षा है, वहां गति का धीमा हो जाना स्वाभाविक ही है। इसलिए फिल्म में कहीं भी क्षिप्रता नहीं है। फिल्मांकन में मणि कौल ने नई तकनीक का उपयोग किया है। कैमरा किसी जगह स्थिर किया जाता है। कैमरे के सामने बालो आती है। कैमरा काफी देर तक एक ही दृश्य पर टिका रहता है। फिल्मकार का तर्क है कि तेजी से गुजरते दृश्य का अल्पांश ही हम देख पाते है। ध्यान से देखने का हमें अवसर ही नहीं मिलता। जब हम किसी दृश्य को ध्यान से और देर तक देखते रहे तो उसमें हमारा सौन्दर्य बोध और कल्पनाशीलता एक नई सौन्दर्यसृष्टि करती है। दर्शक की रचनात्मक भागीदारी की दृष्टि से यह तकनीक बहुत मूल्यवान है। मूल कहानी की अपेक्षा इसका प्रस्तुतीकरण ही फिल्म जगत में चर्चा का विषय रहा था। अभिनय शून्यता, संवाद हीनता, स्थिर चित्रीकरण आदि उनकी विशेषताएँ है। Low Angle का फिल्मांकन में उपयोग करके सिनेमा में भी साहित्य की भाँती दर्शकों को भागीदारी का अवसर प्रदान किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में जो कि मूल रूप से नाटक था, में संवादों को अत्यधिक महत्व दिया गया है। मणि कौल ने क्षणभर के लिए बाह्य प्रकृति का धुंधला सौन्दर्य अंकित करने के अतिरिक्त सारा कार्य व्यापार मल्लिका की कुटिया में ही दिखाया है। इसलिए बाह्य दृष्टि से इसका स्वरूप फोटोप्ले या फिल्मांकित नाटक है। निर्देशक की मान्यता है कि पहले साहित्यिक कृति को यथावत् प्रस्तुत किया जाए और फिर उसमें कलात्मकता का समावेश हो। इसके प्रस्तुतीकरण में एक नया प्रयोग किया गया है। पूरे नाटक के संवाद बिना उतार-चढ़ाव के सहज ढ़ंग से पढ़वाकर रेकार्ड कर लिए। उसके बाद पात्रों का अभिनयशून्य फिल्मांकन किया। तत्पश्चात् Re-Recording में माइक को पास और दूर तथा भिन्न कोणों पर रखकर और अन्य यांत्रिक उपकरणों द्वारा संवादों को उतार चढ़ाव देने का प्रयत्न किया। यंत्रों के द्वारा संवाद में इन्टोनेशन पैदा करने का अद्‌भूत प्रयोग था। प्रयोगशिलता के अत्यधिक आग्रह के कारण 'उसकी रोटी' और 'आषाढ़ का एक दिन' दोनों फिल्में प्रस्तुतीकरण के नई भुलभुलैया में खोकर रह गई। पारंपरिक फिल्में देखने की आदत से मजबूर भारतीय दर्शकों के सर के ऊपर ये फिल्में गई।

प्रस्तुतीकरण में विभिन्न प्रयोग करने वालों में कुमार साहानी भी है। इन्होंने निर्मल वर्मा के उपन्यास ' मायादर्पण' पर इसी नाम से फिल्म बनाई थी। वे फ्रेन्च न्यूवेब के फिल्मकार रॉबर्ट ब्रेसाँ के सहायक के रूप में काम कर चुके थे। न्यू वेबवाला प्रभाव इस फिल्म पर दिखाई देता है। इस तरह के प्रस्तुतीकरण में कृति की अपेक्षा निर्देशक का हस्तक्षेप ज्यादा रहता है। कृति को फिल्माते समय उसे कृतिकार के नजरिए से नहीं तो फिल्मकार की नजर से देखा जाता है। इन फिल्मकारों में वैयक्तिकता का प्रश्न सामाजिक या राजनीतिक विचारों के संदर्भ में नहीं उठाया है, उसका संदर्भ कलात्मक है। मुख्य रूप से यह प्रश्न फिल्मकार की भाषा और उसकी शैली से जुड़ा हुआ है। कुमार साहनी में जो वैयक्तिकता का आग्रह है, उसका संबंध सिनेभाषा के उपयोग अर्थात दृश्यांश, कोण, मोन्ताज, ध्वनि और प्रकाश के वैयक्तिक उपयोग के ढ़ंग से है।

संक्षेप में फिल्म के सफल और असफल होने में प्रस्तुतीकरण एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसको नकारा नहीं जा सकता।

+ + +

षष्ठ अध्याय
उपसंहार

भारतीय जनमानस में सिनेमा हमेशा से ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। सिनेमा से जुड़े हर पहलू पर आम भारतीय अपनी रूचि एवं राय रखता है। उसमें भी फिल्मों में काम करनेवाले कलाकारों के प्रति तो पागलपन की हद तक आकर्षण है। भारतीय सिनेमा जगत में घटी किसी भी घटना की चटखारे ले लेकर चर्चा की जाती है। विश्व में आज सबसे ज्यादा फिल्में भारत में ही बनती है। उसमें भी दक्षिण भारत में। हॉलीवूड़ की तर्ज पर मुंबई फिल्म जगत को बॉलीवूड़ तो दक्षिण भारतीय फिल्म जगत को टॉलीवूड़ की संज्ञा दी जाती है। दक्षिण भारत में फिल्मों के प्रति लोगो का आकर्षण तो देखते ही बनता है। फिल्मी कलाकारों के अंधानुकरण के मामले में उनका कोई हाथ पकड़ नहीं सकता। कलाकार के मर जाने पर आत्महत्या करने को तक ये राजी हो जाते है। यही करण हे कि इसी लोप्रियता का फायदा उठाकर वहाँ के कलाकार राजनीति में आकर भी यशस्वी हो जाते है। कई तो मुख्यमंत्री तक बने है। जैसे एन. टी. रामाराव, एम. जी. रामचंद्रन, एम. करूणानिधि, जयललिता आदि। खैर, तात्पर्य यही कि फिल्में हमारी जीवनशैली का एक अभिन्न अंग बन गई है।

प्रेमचंद एवं कमलेश्वर की रचनाओं को पढते समय उस पर बनी फिल्मों की स्थूल रूप में जानकारी हुई। तभी यह विचार मन में कौंधा कि ऐसे कितने साहित्यकार एवं रचनाएँ है जिन पर हिंदी में फिल्में बनी है। क्यों ना इस दृष्टि से अनुसंधान किया जाए। वैसे भी कथेतर साहित्य की नव्यतम विधाओं में मेरी जिज्ञासा पहले से ही रही है। हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्में कुछ चर्चा में रही तो कुछ कब बनी और कब गई यह भी पता नहीं चला। इस सबको व्यवस्थित रूप से अनुसंधानात्मक प्रविधि से देखना मुझे आवश्यक लगा, इसी जिज्ञासा ने इस अनुसंधान को बल मिला जो आज इस रूप में आपके सामने है।

विषय की व्यापकता तब समझ में आई जब मैं इसे परत-दर-परस्त देखता गया और इस नतीजे पर पहुँचा कि एक विशिष्ट शीर्षक के अंतर्गत ही इसे अध्ययन के लिए शोध की दृष्टि से लिया जा सकता है। क्योंकि साहित्यिकार, उसकी कृति, उसपर बनी फिल्म, फिल्मांकन से संबंधित तकनीक आदि को समेटना बहुत आवश्यक हो गया। इतने व्यापक विषय को 'हिंदी की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन (प्रेमचंद और कमलेश्वर के विशेष संदर्भ में)' के शीर्षक में बाँधा। अनुसंधान की सुविधा के लिए उसे निम्नोक्त अध्यायों में विभाजित किया है-

1) प्रथम अध्याय- हिंदी फिल्म का इतिहास

2) द्वितीय अध्याय - फिल्मांकन की प्रक्रिया

3) तृतीय अध्याय - हिंदी की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन

4) चतुर्थ अध्याय - साहित्यिक कृतियों का पटकथा की दृष्टि से अध्ययन

5) पंचम अध्याय - साहित्यिक कृतियों का प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अध्ययन

6) षष्ठ अध्याय - उपसंहार

हिंदी फिल्म का इतिहास नामक प्रथम अध्याय में विश्व में फिल्म विधा का कैसे विकास हुआ, विकास होते ही छः माह के अंदर ही यह कला माध्यम मुंबई, भारत कैसे आया, भारत में इस कला माध्यम के आगमन से क्या प्रतिक्रिया हुई, पहली भारतीय फिल्म और पहली हिंदी फिल्म इन सारी बातों का ऊहापोह इस अध्याय में किया गया है। उसके बाद हिन्दी की पहली

फिल्म से लेकर 2012 की अद्यतन फिल्म इन लगभग सौ सालों के हिंदी फिल्म इतिहास को इसमें अधोरेखित किया गया है। हिंदी फिल्म के इतिहास को विवरणात्मक रूप में स्पष्ट करते हुए कुछ प्रमुख फिल्में, कुछ फिल्मकार, कुछ कलाकार, विभिन्न फिल्मी परिवर्तन एवं फिल्म निर्माण कंपनियाँ आदि सभी को इसमें समेटने की कोशिश की गई है।

द्वितीय अध्याय फिल्मांकन की प्रक्रिया से संबंधित है। इसमें किसी कहानी को लेकर फिल्म बनने तक की पूरी प्रक्रिया को ब्यौरेवार समझाया गया है। कहानी, पटकथा, संवाद, गीत-संगीत, निर्माता-निर्देशक, कलाकार एवं विभिन्न तकनीशियन आदि महत्वपूर्ण घटकों पर प्रकाश ड़ाला गया है। हम जिस फिल्म को 2 से 3 घण्टेभर में देखते है उसके पीछे इन सभी घटकों की, महीनों की तो कभी-कभी वर्षों की मेहनत होती है। प्रत्येक फिल्म की निर्मिति का अपना एक इतिहास होता है। कहानी कैसी सूझी, पटकथा कौन लिखेगा, संवाद कैसे होंगे, फिल्म की कथावस्तु के हिसाब से कौन से कलाकार इसमें लेना आवश्यक है, किस गीत-संगीतकार पर इसकी जिम्मेदारी ड़ालनी होगी से लेकर शूटिंग कब, कहाँ, कैसे करनी होगी इन सब की फिल्म निर्मिति के पीछे अपनी -अपनी भूमिका होती है। मूक फिल्में, सवाक फिल्में,श्वेतश्याम, रंगीन, 16 एम. एम., 35 एम. एम., इस्टमन कलर, सिनेमास्कोप एवं डिजीटल आदि सभी प्रकारों में फिल्मांकन की प्रक्रिया अलग-अलग रही है।

इस अनुसंधान कार्य के महत्वपूर्ण अध्याय 'हिंदी की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन (प्रेमचंद एवं कमलेश्वर के विशेष संदर्भ में) में हिंदी साहित्य की पहली कृति जिसपर की फिल्म बनी थी से लेकर अंतिम कृति तक का विचार किया गया है। स्थूल रूप में अबतक 50 से अधिक साहित्यिक कृतियों पर फीचर फिल्में बन चुकी है और लगभग इतनी ही साहित्यिक कृतियों पर धारावाहिक, वृत्तचित्र, टेलीफिल्में बन चुकी है। प्रारंभ में जिन साहित्यकारों की रचनाओं पर फिल्में बनी उनको सिलसिलेवार लिया गया है। बाद में ऐसे भी हिंदी के गैर साहित्यिक लेखक है जिन्होंने फिल्मों के लिए कहानी, संवाद, पटकथा आदि लिखी है उनके उपर भी विहंगम दृष्टि ड़ाली गई है। जो फिल्मी कला माध्यम में विशुद्ध रूप से सिनेलेखक कहलाते है।

साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों की चर्चा करते हुए उसके यशापयश की भी जानकारी देने की कोशिश की गई है, किन कारणों से वह फिल्म हिट हुई या पीट गई का ऊहापोह किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में साहित्यिक कृतियों का पटकथा की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया है। किसी फिल्म के लिए साहित्यिक कृति को चुनना यह तो बहुत प्राथमिक स्वरूप है, असल काम तो उसपर पटकथा लिखना होता है। क्योंकि पूरी फिल्म ही पटकथा नामक जमीन पर खड़ी होती है। साहित्य लेखन एवं पटकथा लेखन यह दोनों एकदम अलग-अलग बातें है। साहित्य की किसी भी विधा को लेकर लिखना साहित्यिक कर्म है परंतु पटकथा लिखना विशुद्ध रूप से फिल्मी माध्यम के लिए किया गया काम होता है। एक अच्छा साहित्यिक एक अच्छा पटकथाकार होगा इसकी कोई गारंटी नहीं होती, न ही अच्छा पटकथाकार अच्छा साहित्यकार होने की। दोनों क्षेत्र अलग-अलग प्रतिभा की माँग करती है। कई ऐसी फिल्में है जो कि मात्र अच्छी पटकथा होने कारण हिट हुई तो अच्छी कहानी होने के बावजूद पटकथा में कमजोरी होने से फिल्म असफल भी होती है। इसी अध्याय में पटकथा के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों पर प्रकाश ड़ाला गया है।

साहित्यिक कृतियों का प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अध्ययन पंचम अध्याय में किया गया है। इसमें कहानी अच्छी होने के बावजूद फिल्म का असफल होना, और कहानी लघु एवं साधारण होते हुए भी फिल्म का सफल होना आदि के मध्य जो प्रस्तुतीकरण वाला महत्वपूर्ण हिस्सा है, को लेकर चर्चा की गई है। हिंदी की साहित्यिक कृतियों का तो दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि साहित्य के रूप में तो कृति बहुत सफल होती है परंतु प्रस्तुतीकरण के धरातल पर वह शहीद हो जाती है। गोदान, सेवासदन, तीसरी कसम, उसने कहा था जैसी हिंदी साहित्य की मील की पत्थर माने जाने वाली रचनाएँ फिल्म के रूप में बहुत ही बेकार साबित हो गई, इन कृतियों के फिल्मांकन को देखकर रोना आता है, साथ ही चीड़ - सी उत्पन्न होती है। प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से यह साहित्यिक कृतियाँ कहां तक सहायक सिद्ध हुई है इसकी चर्चा इस अध्याय में की गई है।

हिंदी की साहित्यिक कृतियों का फिल्मांकन (प्रेमचंद और कमलेश्वर के विशेष संदर्भ में) इस शोध कार्य को प्रस्तुत करते समय एक अनुसंधाता के रूप में जो उपलब्धियाँ, संभावनाएँ एवं निष्कर्ष प्राप्त हुए है वे इस प्रकार हैं-

निष्कर्ष :

1) विश्व पटल पर जैसे ही फिल्म विधा का जन्म हुआ उसके छः महीने के अंदर ही यह कला भारत में आ गई। किसी भी वैज्ञानिक खोज का इतनी जल्दी भारत आना अपने आप में एकमात्र घटना होगी।
2) नियति का खेल देखिए जिन्होंने विश्व में सिनेमा की नींव रखी वे ही इसके भविष्य के बारे में संशकित थे, और उन्होंने स्वयं इसे छोड़ दिया था।
3) भारत मे जिसने पहली फिल्म बनाई वे दादासाहेब फालके, उनके अंतिम दिन काफी गरीबी मे बीते।
4) भारत की पहली फिल्म एक मराठी व्यक्ति ने बनाई थी।
5) प्रारंभ मे पौराणिक फिल्में ही बनती थी, धर्म ही इनका प्रमुख आधार था।
6) सबसे ज्यादा फिल्में बनाने का कीर्तिमान काफी वर्षों से भारत के पास ही है।
7) भारत में फिल्म का जन्म मुंबई में हुआ और आज तक यही शहर फिल्म निर्मिति का प्रमुख केन्द्र है।
8) भारत में सबसे ज्यादा फिल्में दक्षिण भारत में बनती है।
9) सबसे अधिक एवं सफल फिल्में बंगाली साहित्य पर बनी है।
10) भारत में फिल्म की सफलता आधार उसकी व्यावसायिक कमाई को लेकर माना जाता है।
11) कलात्मक फिल्में भारतीय जनमानस में सफल न होने के पीछे अज्ञान, निरक्षरता एवं बौद्धिकता का न होना है। अभी भी प्रबुद्ध दर्शकों की कमी खलती है।
12) साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों की अपेक्षा साहित्यिकारों द्वारा फिल्मों में लेखन सर्वाधिक है। मतलब, सिनेकहानी, संवाद, पटकथा, गीत आदि के क्षेत्र में।
13) कमलेश्वर को छोड़कर हिंदी के किसी भी साहित्यिक को फिल्मों में व्यावसायिक सफलता नहीं मिली।
14) फिल्म से संबंधित विषय काफी व्यापक है, इसे इतने में समेटना काफी दूष्कर कार्य है।
15) इस विषय को पाठ्यक्रम के रूप में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयीन स्तर पर अध्ययन के लिए रखना आवश्यक है।

उपलब्धियाँ :

1) हिंदी फिल्म का इतिहास मालुम हुआ।
2) फिल्मांकन की प्रक्रिया को नजदीक से जानने का अवसर मिला। उसका तकनीकी पक्ष मालुम हुआ।
3) हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों की जानकारी प्राप्त हुई।
4) साहित्यिक कृतियों का पटकथा की दृष्टि से अध्ययन हुआ।
5) साहित्यिक कृतियों का प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अध्ययन हुआ।

संभावनाएँ :

1) विषय की व्यापकता के परिप्रेक्ष्य में इस पर बृहद् शोध प्रकल्प की आवश्यकता है।
2) हिंदी फिल्म का इतिहास शास्त्रीय पद्धति से लिखने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।
3) प्रत्येक फिल्म एवं फिल्मकार को लेकर एक पुस्तक लिखी जा सकती है।
4) भारतीय साहित्य का हिंदी फिल्मों में योगदान नामक विषय पर बृहद् शोधकार्य हो सकता है।

+ + +

संदर्भ ग्रंथ सूची

अ. मौलिक ग्रंथ

हिन्दी

अ.क्र.	रचनाकार	रचना का नाम	प्रकाशन	वर्ष
1.	प्रेमचंद	प्रेमचंद-कहानी रचनावली भाग - 1,2,3,4,5,6	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	2010
2.		गोदान	सुमित्र प्रकाशन, इलाहाबाद	2010
3.		प्रेमचंद कहानी का श्रेष्ठ	शिक्षा भारती, दिल्ली	2001
4.		निर्मला	शिवानी बुक्स, नई दिल्ली	2004
5.		सेवासदन	जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	2007
6.		गबन	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2007
7.		रंगभूमि	प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली	2011
8.	प्रकाशचंद्र गुप्त	भारतीय साहित्याचे निर्माते प्रेमचंद	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	1982
9.	कमलेश्वर	समग्र कहानियाँ	राजपाल ॲन्ड सन्स, दिल्ली	2010
10.		काली आँधी	"	2010
11.		परिक्रमा	"	2008
12.		जलती हुई नदी	"	2008

13.		जो मैंने जिया	"	2008
14.		कितने पाकिस्तान	"	2004
15.	चित्रा मुद्गल	सद्गति तथा अन्य नाटक	"	1999
16.	आर.के नारायण	गाइड	"	2009
17.	मोहन राकेश	आषाढ़ का एक दिन	"	2005
18.	मोहन राकेश	प्रतिनिध कहानियाँ	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2005
19.	हबीब तनवीर	चरणदास चोर	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2004
20.	भगवतीचरण वर्मा	चित्रलेखा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2009
21.	विमल मित्र	सोंहब बीबी गुलाम	"	2011
22.	राजेन्द्र यादव	सारा आकाश	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली	2008
23.	अमृता प्रीतम	पिंजर	हिंदी पाकेट बुक्स, नई दिल्ली	2010
24.	धर्मवीर भारती	गुनाहों का देवता सूरज का सातवा घोडा	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली "	2008 2010
25.	शरतचंद्र	देवदास	मनोज पाकेट बॉक्स, नई दिल्ली	2010
26.	शंकर शेष	घरौंदा	किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली	2000
27.	मन्नू भंडारी	मेरी प्रिय कहानियाँ	राजपाल अॅन्ड सन्स, दिल्ली	2010
28.	मुक्तिबोध	सतह से उठता आदमी	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली	2008
29.	दक्षिणेश्वर रेणु	रेणु की आँचलिक कहानियाँ	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2009
30.	विभूतिभूषण बंदोपाध्याय	पथेर पांचाली	ज्ञानेश प्रकाशन, नागपुर	1999

31.	विनोदकुमार शुक्ल	नौकर की कमीज	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2010
32.	सूरेन्द्र चौधरी	फणीश्वरनाथ रेणु	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	2003
33.	लाला श्री निवासदास	परीक्षा गुरू	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2008
34.	ए.के.हंगल	मैं एक हरफन मौला	"	2008
35.	निर्मल वर्मा	जलती झाड़ी	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली	2008
36.	शरतचंद्र	परिणीता	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2005
37.	उत्पलदत्त	उत्पल दत्त के तीन नाटक	"	2009
38.	शैवाल	दामुल उपन्यासिका तथा अन्य कहानियाँ	हिंद पाकेट बुक्स, नई दिल्ली	1994

मराठी

अ.क्र.	रचनाकार	रचना का नाम	प्रकाशन	वर्ष
1.	श्रीराम लागू	लमाण	पॉप्यूलर प्रकाशन, मुंबई	2011
2.	नीना कुलकर्णी	अंतरंग	श्रीविद्या प्रकाशन, पुणे	2003
3.	शरयू पेंडणेकर	ऋतु आए ऋतु जाए	पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे	2011
4.	सूधीर फडके	जगाच्या पाठीवर	राजहंस प्रकाशन, पुणे	2010
5.	ज्ञानेश्वर नाडकर्णी	अभिनय	श्रीविद्या प्रकशन, पुणे	1999

आ. सहायक ग्रंथ

अ.क्र.	रचनाकार	रचना का नाम	प्रकाशन	वर्ष
1.	विनोद दास	भारतीय सिनेमा का अंत:करण	मेधा बुक्स, दिल्ली	2003
2.	वीरेन्द्र सक्सेना	हिंदी सिनेमा - नीति और अनीति	पंकज बुक्स, दिल्ली	2010
3.	विवेक दुबे	हिंदी साहित्य और सिनेमा	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली	2009
4.	असगर वजाहत/ प्रभात रंजन	टेलीविजन लेखन	राधाकृष्ण प्रकाशन	2010
5.	विनोद भारद्वाज	सिनेमा : कल, आज, कल	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	2006
6.	महेश आनंद	कहानी का रंगमंच	"	2001
7.	अनवर पठाण/ सैबल चटर्जी	हॉलीवुड बॉलीवूड	"	2006
8.	राजकुमार केसवानी	बॉम्बे हॅकी	"	2010
9.	सईद खान/ भुवेन्द्र त्यागी	संगीत के जवाहरात	"	2009
10.	सईद अहमद/ दिलीप कुमार	अहदनामा मोहब्बत	"	2010
11.	गौरीशंकर रैना	टेलीविजन : चुनौतियाँ और संभावनाएँ	"	2012
12.	गौरीशंकर रैणा	संचार माध्यम लेखन	"	2009
13.	युगांक धीर	अमिताभ बच्चन की संघर्ष गाथा	"	2008
14.	उदयन वाजपेयी	अभेद्य आकाश	"	2012

15.	राही मासुम राजा	सिनेमा और संस्कृति	"	2009
16.	विमल मित्र	बिछुडे सभी बारी बारी	"	2010
17.	राजेन्द्र पांडे	पटकथा कैसे लिखे	"	2006
18.	यतीन्द्र मिश्र	कुँवरनारायण संसार	"	2002
19.	देवेन्द्रराज अंकुर	दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज	"	2010
20.	दिनेश श्रीनेत	पश्चिम और सिनेमा	"	2012
21.	अमरीश पुरी	जीवन का रंगमंच	"	2010
22.	मन्नू भंडारी	कथा पटकथा	"	2006
23.	विनोद तिवारी	फिल्म की पत्रकारिता	"	2007
24.	राजेन्द्र सहगल	सिनेमा वक्त के आइने में	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली	2011
25.	नसरीन मुन्नी कबीर	जावेद अख्तर से बातचीत	"	2008
26.	असगर वजाहत	व्यावहारिक निर्देशिक का पटकथा लेखन	"	2011
27.	कृष्णा गोपाल अग्रवाल	विधि अनुवाद : विविध आयाम	"	2008
28.	विमल	हिंदी चित्रपट एवं संगीत का इतिहास	"	2010
29.	हरीश कुमार	सिनेमा और साहित्य	"	2010
30.	उमा गर्ग	संगीत का सौंदर्य बोध	"	2010
31.	रेखा कसवार	किरदार जिन्दा है	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2010

32.	राधू करमारकर	कैमरा : मेरी तीसरी आँख	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	2010
33.	राजेन्द्र यादव, बासु चटर्जी	सारा आकाश पटकथा	"	2007
34.	मनोहरश्याम जोशी	पटकथा लेखन, एवं	"	2007
35.	प्रेमसिंह/ सुषमा आर्य	रंगप्रक्रिया के विविध आयाम	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली	2007
36.	रामशरण जोशी	मीडिया और बाजारवाद	"	2010
37.	मन्नू भंडारी/ वासु चट्टाचार्य	रजनीगंधा पटकथा	"	2009
38.	गुलजार	आँधी	"	2005
39.	अनुपम ओझा	भारतीय सिनेसिद्धांत	"	2009
40.	जयदेव तनेजा	आधुनिक भारतीय रंगलोक	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली	2006
41.	रामकृष्ण	सिनेसंसार और पत्रकारिता	"	2006
42.	सत्यजित राय	चलचित्र : कल और आज	राजपाल अॅन्ड सन्स, दिल्ली	1994
43.	सत्या सरण	गुरूदत्त के साथ एक दशक	"	2011
44.	बी.एन.शर्मा	सवाब् भारतीय फिल्मस्	राज पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली	1995
45.	विष्णु खरे	सिनेमा से संवाद	प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली	2009
46.	मृत्युंजय	सिनेमा के सौ बरस	शिल्पायतन प्रकाशन, नई दिल्ली	2011
47.	कमलाप्रसाद	फिल्मों के सौंदर्यशास्त्र और भारतीय सिनेमा	"	2011

48.	विवेकानंद	टेलीफिल्म : निर्माण कला	सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली	2010
49.	प्रसून सिन्हा	भारतीय सिनेमा	श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली	2006
50.	रामचंद्र तोंडे	सतरंज के खिलाडी : कृति और फिल्मांकन	विद्या प्रकाशन, कानपुर	2009
51.	दिलचस्प	हिंदी सिनेमा के सौ बरस	भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली	2009
52.	नारायण प्रसाद त्रिपाठी	भारतीय हिंदी सिनेमा का इतिहास	मंगलम प्रकाशन, दिल्ली	2009
53.	हणमंतराव पाटील	भक्तिकालीन काव्य में मानवीय मूल्य	समता प्रकाशन, कानपुर	2009
54.	सी. भास्करराव	फिल्म और फिल्मकार	कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली	2010
55.	प्रभुनाथ सिंह आजमी	पटकथा का सच	मेधा बुक्स, दिल्ली	2006
56.	गार्गी गुप्ता/ पूरनचंद टण्डन	अनुवाद बोध	भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली	1990
57.	नीना गुप्ता	अनुवाद शतक भाग-1,2	"	2008
58.	नीना गुप्ता	अनुवाद मूल्यांकन	"	2002
59.	चंद्रकांत बान्दिबडेकर	धर्मवीर भारती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	2003
60.	विश्वनाथ मिश्र	हिंदी चलचित्रों मे साहित्यिक उपादान	शोधप्रबंध	1977

मराठी

अ.क्र.	रचनाकार	रचना का नाम	प्रकाशन	वर्ष संस्करण
1.	दत्ता गालें	कॅमेरा बोलतोय	इंद्रायणी साहित्य, पुणे	1997
2.	अरविंद वैद्य	दिल की कलम से	जनशक्ति वाचक चळवळ, औ॑बाद	2009
3.	सदानंद गोखले	मूव्ही मेकर्स	दिलीपराज प्रकाशन, पुणे	2007
4.	सुधीर नांदगावकर	सिनेमा संस्कृति	उत्कर्ष प्रकाशन, पुणे	2011
5.	श्यामला बनारसे	सत्यजीत राय : भारतीय मन्वंतर	मौज प्रकाशन गृह, मुंबई	2010
6.	नंदिता पुरी	अनलाईकली हिरो : ओम पुरी	मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे	2012
7.	अशोक उजळंबकर	तुम्हें याद होगा	अजिंक्य प्रकाशन, औरंगाबाद	2001
8.	इसाक मुजावर	दादासाहेब फाळके	नवचैतन्य प्रकाशन, मुंबई	2010
9.	भाई भगत	तीन भिंतीची दुनिया	अक्षर प्रकाशन, मुंबई	2001

इ. पत्र-पत्रिकाएँ

1. आउटलुक, फरवरी, 2011

2. लोकमत समाचार के विभिन्न अंक, जैसे 29 अक्तुबर 2011, 17 जनवरी 2011, 21 मई 2011